ब्रज-भाषा-काव्य में
राधा

डॉ० उषा पुरी
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भूमिका
आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

भूमिका

श्रीमती उषा पुरी की इस पुस्तक को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। इस में ब्रजभाषा-काव्य में चित्रित राधा के विविध रूपों का परिचय दिया गया है। लेखिका ने बड़े परिश्रम से विभिन्न भावधारा के कवियों और कवि-भक्तों की कृतियों से सामग्री संकलित की है और मध्यकालीन काव्य, संगीत, कला और दर्शन के क्षेत्र को उल्लास-मुखर बनाने वाली राधिका की विभिन्न अवस्थाओं, मनःस्थितियों और रूप-वैविध्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

आधुनिक युग में किसी बात पर शास्त्रीय ढंग से विचार करने के लिए पूर्वापर-क्रम का विचार आवश्यक माना जाता है। जिस विषय पर विचार किया जाता है उसका आरम्भ कब हुआ और उसके विकास में बाह्य परिस्थितियों ने कब, किस प्रकार उसे प्रभावित किया, क्यों उसने नये नये रूपों में आत्म-प्रकाशन किया—इत्यादि विचार विषय की ठीक-ठीक उपलब्धि के लिए, बहुत आवश्यक समझे जाते हैं। भारतीय धर्म-साधना और साहित्य के विद्यार्थी के लिए इस दृष्टि से राधा का अचानक आविर्भाव और अद्भुत प्रसार एक समस्या है। उपलब्ध साहित्यिक सामग्री से लगता है कि नवीं शताब्दी से राधा का साहित्य में प्रवेश होता है, और धीरे-धीरे साहित्य, संगीत, चित्र, मूर्ति आदि ललित अभिव्यक्तियों के माध्यम राधामय हो उठते हैं। समूचे भारत के मध्यकालीन लालित्य की अभिव्यक्ति के प्रयास इस रहस्यमय चरित्र के इर्द-गिर्द चक्कर काटते दिखाई देते हैं। यह बात और भी रहस्यमय इस-लिए लगने लगती है कि मध्यकालीन भक्ति-साहित्य के प्रधान उप-जीव्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवतपुराण में राधा का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। प्रस्थानत्रयी के बाद भागवत को एक अन्य प्रस्थान होने का गौरव इसी ग्रन्थ-रत्न को मिला था। कई वैष्णव सम्प्रदायों में तो एकमात्र भागवत ही मुख्य प्रमाण स्वीकार किया जाने लगा था—'शास्त्रं भागवतं पुराण-

णममलम्' पर पूर्ण निष्ठा रखने वाले भी राधारानी की अपार महिमा के गान गाते रहे। निस्सन्देह इस महिमामय चरित्र ने भारतीय चित्र को अतल गांभीर्य से अभिभूत किया था।

श्री राधा भगवान् श्री कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति हैं। मध्यकालीन भक्ति-साहित्य के अध्येता को कुछ बातें स्वीकार करके आगे बढ़ना होता है, या बढ़ना चाहिए। प्रथम तो यह कि परात्पर पुरुष श्रीकृष्ण भगवान् के स्वयं रूप हैं—प्रेम, लीला, आनन्द, ज्ञान और माधुर्य के एकमात्र आश्रय। दूसरा यह कि उनका परिचय ब्रह्म, परमात्मा आदि शब्दों से पूरा-पूरा नहीं मिलता। ये शब्द उनके अंश-विशेष की ओर इंगित करते हैं। केवल चिन्मय रूप ब्रह्म है, केवल शक्ति-चैतन्य-संवलित रूप परमात्मा है—परन्तु इन शब्दों से उनके आनन्दमय रूप का अभास भी नहीं मिलता। 'भगवत्' (हिन्दी 'भगवान्') शब्द में इनके सभी रूपों और पक्षों का अन्तर्भाव है। भागवत में कहा है :

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥

यह 'अद्वय' ज्ञान के विभिन्न पहलुओं की ओर इंगित करता है। परवर्ती आचार्यों ने इसकी विस्तृत व्याख्या की है। भगवान् को ब्रह्म और परमात्मा की तुलना में जिस विशेष तत्त्व का व्यंजक माना गया है, वह है आनन्द-तत्त्व। इस आनन्द की प्रकाशिका शक्ति का नाम ह्लादिनी शक्ति है। राधा ही वह ह्लादिनी शक्ति हैं। इस शक्ति के बिना भगवान् पूर्ण और स्वयं रूप में उपलब्ध नहीं होते। राधा ही उनकी पूर्ण अभिव्यक्ति करा सकती हैं। भक्तों ने 'राधा बिना आधा कृष्ण' कह कर इस बात की ओर इंगित किया है।

उपलब्ध साहित्यिक और पुरातात्त्विक सामग्री का विश्लेषण करके देखने वाले विद्वानों ने सुझाया है कि लगभग पाँचवीं शताब्दी के बाद भारतीय धर्म-साधना के हर क्षेत्र में शक्ति और शक्तिमान् के विवेक का प्रबल प्रभाव दिखाई देने लगता है। पर इस बात को और भी पुराने काल तक ले जाने के प्रयास भी कम नहीं हैं। इतना निश्चित है कि भक्तिकालीन राधा-विषयक ह्लादिनी शक्ति के विचार के निश्चित

रूप ग्रहण करने के सैकड़ों वर्ष पहले भारतीय धर्म, शिल्प और साहित्य में शक्ति और शक्तिमान् के विवेक का प्रादुर्भाव हो चुका था। यह नहीं कि पहले नहीं था; बात सिर्फ इतनी है कि उसे परिपुष्ट माध्यमों का सहारा मिलने लगा। इस शक्ति-कल्पना के प्रभाव को देखना हो तो भारतवर्ष के प्रौढ़ शिल्प को और धर्म-साधना के विपुल साहित्य को देखना चाहिए। इसकी अन्तिम और अत्यन्त प्रौढ़ परिणति 'राधा' है। कोई आश्चर्य नहीं कि मानवीय अभिव्यक्ति के सर्वोच्च धरातलों को राधा की आविर्भूति ने इस प्रकार छा लिया हो। राधा मध्यकालीन भारतीय चिन्तन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

भारतवर्ष की सभी भाषाओं के साहित्य में इस महामहिमामयी राधा का प्रभाव मिलेगा, पर ब्रजभाषा का साहित्य तो श्री राधा और उनके लीला-सखा श्रीकृष्ण की लीलाओं का भण्डार ही है। उनकी लीलाओं के कारण ब्रजभूमि मध्यकालीन भारत का तीर्थराज बन गई। बिहारी ने सलाह दी थी :

तजि तीरथ हरि राधिका तन दुति करि अनुराग।
जिहिं ब्रज केलि निकुंज मग पग-पग होत प्रयाग॥

ब्रजभाषा के इस साहित्य में राधारानी के विविध लीला-विलास को कुछ इस प्रकार चित्रित किया गया है जिसमें प्रेम के दो पक्ष, जड़ोन्मुख श्रृंगार और चिन्मुख भक्ति, विरुद्ध दिशाओं में न जाकर, अजीब ढंग से घुल-मिल गए हैं। साहित्य की यह अदृष्टपूर्व उपलब्धि है।

मुझे आशा है कि श्रीमती उषा पुरी की इस पुस्तक से इस साहित्य के अध्ययन में सहृदयों की रुचि और भी बढ़ेगी। आलोचना क्षेत्र में यह उनकी पहली रचना है। परमात्मा उन्हें अधिकाधिक शक्ति और स्वास्थ्य दें। वे अधिकाधिक गंभीर रचनाओं से साहित्य को समृद्ध करती रहें।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

लेखकीय

पुरुषोत्तम कृष्ण की चिर सहचरी 'राधा' का ब्रजभाषा-काव्य में अत्यधिक नामोल्लेख देखकर लगता है कि मध्यकालीन साहित्य को भक्ति, दर्शन और काव्य के क्षेत्र में उसने बहुत सीमा तक प्रभावित किया है। भारतीय सांस्कृतिक चेतना के उत्थान-पतन के समानान्तर—'राधा' की परिकल्पना भी निरन्तर पग बढ़ाती रही है। उसके इस विकास को समझ पाने की सहज जिज्ञासा के कारण ही इस ओर किंचित् अनुशीलन प्रस्तुत करने का दु:साहस कर रही हूँ।

'राधा' साहित्य की अनमोल निधि है। प्रथमतः साहित्य में गोपिका के रूप में प्रवेश पाया और फिर शनैः-शनैः मध्यकालीन सम्पूर्ण भक्ति, दर्शन और काव्य पर वह इतनी समग्रता से छा गई कि ब्रजभाषा से इसका अटूट सम्बन्ध स्थापित हो गया। आज उसे निकाल देने पर वहाँ कुछ शेष रह ही नहीं जायेगा।

जिस सांसारिकता की भावना को निराकार उपासकों ने माया वह कर छोड़ दिया था, सगुण भक्तों ने उसी को 'लीला' संज्ञा देकर अपनी भक्ति का प्रमुख अंग बना लिया और राधा उसी लीला की प्रसारिका शक्ति बनी।

जीवन की प्रथम ज्योतिर्मयी रश्मि में आँख खोलने के बाद से चिर-विकासशीला राधा को नटखट बालिका, चंचल सुन्दरी, अल्हड़ किशोरी, मुग्धा नायिका, वाग्विदग्धा युवती आदि अनेक रूपों में भक्त-कवियों ने देखा। वह निरन्तर ब्रज-काव्य-मंच पर विद्यमान रही। कहीं उसका चित्रण कृष्ण की स्वकीया के रूप में किया गया है तो कहीं परकीया के रूप में। कृष्ण के सम्बन्ध में ही विविधता नहीं है अपितु भक्तों ने स्वयं भी राधा के साथ भिन्न-भिन्न नाते जोड़े। कुछ कवियों ने शक्ति जगदम्बारूपा वृषभानु-सुता की सेवा करने में ही अपने को धन्य माना है तो कुछ अन्य 'सखी राधा' के गुह्यतम विलास को

निकुंज-रंध्रों से झाँकने के अधिकारी बन बैठे। एक श्रेणी ऐसी भी थी जिसने 'राधा' नामोच्चरण मात्र को सब प्रकार के प्रखर दोषों से मुक्ति का साधन माना है। इस प्रकार शक्ति, श्री, जगदंबा, प्रेयसी, आराध्या, आह्लादिनी शक्ति, संधिनी शक्ति आदि अनेक रूपों में उसका चित्रण उपलब्ध है। इस रूप-वैविध्य के कारण ही वैष्णव भक्ति (कृष्ण-भक्ति) में सम्प्रदाय-विभाजन की आवश्यकता जान पड़ी।

कृष्ण-भक्तिपरक वैष्णव साहित्य का अवलोकन करने से जान पड़ता है कि उसमें जो कुछ भी विशेपता है वह 'राधा' की ही है, कृष्ण की नहीं। माधव का वर्णन तो आद्यन्त एक ठोस व्यक्ति के रूप में किया गया है। ठोस का तात्पर्य कठोर से नहीं, अपितु रसिक-शिरोमणि होते हुए भी वंशीधर के उस एकात्मक व्यक्तित्व से है जिसमें विकास की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। वे राधा की पृष्ठभूमि बनकर ही पाठकों के सम्मुख आते हैं। इस समान पृष्ठभूमि पर अपनी-अपनी भावना के अनुसार भक्तों ने राधा की अनेक चिर-नवीन मोहक छवियों के काव्य में अंकित किया है।

भक्ति-काल में जिस पूज्य-भावना के साथ राधा की अर्चना आरम्भ हुई थी, वह रीतिकाल तक पहुँचते-पहुँचते अत्यन्त धूमिल पड़ गई तथा राधा नायिका-भेद के आवर्त्त में ही उलझ कर रह गई। कहीं-कहीं काव्यशास्त्र के उदाहरणों में उसका परम्परागत रूप भी ग्रहण किया गया। पुनीत भावनाओं की शून्यता के कारण उसके साथ अनेक अश्लील भाव-भंगिमाओं को जोड़ने में भी वे लोग नहीं झिझके। रीतिकालीन अति शृंगारिकता के कारण 'मीठे से मुँह मोड़ने' वाली कहावत चरितार्थ हुई तथा परवर्ती कवियों ने इस घोर शृंगारिकता को तिलांजलि देकर कृष्ण के राजनीतिक एवं दार्शनिक (गीता के उपदेष्टा) रूप को ग्रहण किया। अतः आधुनिक साहित्य में राधा को नितान्त सीमित क्षेत्र मिल पाया है।

मधुर भक्ति की देन होने के कारण यों तो राधा का शृंगार रस से अटूट सम्बन्ध है किन्तु फिर भी रीतिकालीन विलासोत्तेजना आधुनिक साहित्य में नहीं मिलती। इस युग के प्रतिनिधि जिन कवियों ने उक्त विषय को अपनाया, उनकी कविताओं का मूल स्वर भक्ति ही रहा है

किन्तु अभिव्यक्ति में रीतिकालीन परिष्कृत शैली के दर्शन अवश्य होते हैं। सांस्कृतिक उत्थान के कारण 'हरिऔध' ने ही सर्वप्रथम खड़ी बोली में राधा को एक 'आर्य महिला' के रूप में चित्रित किया है।

ब्रजकिशोर और ब्रजकिशोरी की अमर गाथा को ब्रजभाषा के कवियों ने ही विशेष रूप से अपनाया है। खड़ी बोली के विकास के साथ-साथ 'राधा' की कहानी धीरे-धीरे साहित्य की घेरे से बाहर निकलती चली गई। अतः प्रस्तुत प्रबन्ध में ब्रजभाषा-काव्य में 'राधा' के विभिन्न रूपों का विवेचन करना ही मेरा लक्ष्य रहा है।

ब्रजभाषा-काव्य में राधा विषयक-साहित्य इतने विपुल परिमाण में प्राप्त है कि प्रत्येक कवि पर स्वतन्त्र बृहत् ग्रन्थ की रचना की जा सकती है। उक्त पुस्तक के सीमित कलेवर में विस्तार-भय एवं पुनरावृत्ति-भय के कारण प्रत्येक युग एवं प्रवृत्ति के प्रतिनिधि कवियों को ही लिया गया है। यद्यपि इस पुस्तक का उद्देश्य ब्रजभाषा-काव्य में राधा के विविध रूपों के विकास तक ही सीमित था, इस परिकल्पना को भली भाँति आत्मसात् करने के लिए ब्रजभाषा-काव्य से पूर्व संस्कृत, मैथिली एवं प्राकृत में इसके उद्भव तथा क्रमिक विकास का अनुशीलन भी आवश्यक जान पड़ा।

'श्री राधा के क्रमिक विकास' पर श्री शशिभूषणदास गुप्त का एक शोधप्रबन्ध प्रकाशित हुआ है। किन्तु इस पुस्तक में लेखक का उद्देश्य गौड़ीय सम्प्रदाय में स्वीकृत तथा बंगला-भाषा में प्रतिपादित रचनाओं का विवेचन ही है। बंगला में चित्रित रूपों को ही लेखक ने मुख्यता प्रदान की है। कहीं-कहीं यद्यपि बंगाली तथा हिन्दी कवियों की तुलना भी मिलती है किन्तु वहाँ भी ब्रजभाषा के कवियों एवं रचनाओं का नामोल्लेख-मात्र ही मिलता है—उन रचनाओं का विवेचन तथा उदाहरण कहीं भी दिखाई नहीं देता। इसका कलेवर भी भक्ति-काल की सीमाओं से आबद्ध है। डॉ० श्री विजयेन्द्र स्नातक ने 'राधावल्लभ-सम्प्रदाय सिद्धान्त तथा साहित्य' नामक ग्रन्थ में राधा वल्लभ-सम्प्रदाय में राधा के जिन रूपों को ग्रहण किया है, उन की सुन्दर आलोचना मिलती है। किन्तु उनका मूलभूत उद्देश्य, जैसा कि उन्होंने स्वयं ही लिखा है, राधावल्लभ-सम्प्रदाय के भक्ति-सिद्धान्त और

साहित्य का गवेषणात्मक अध्ययन था, अत: प्रकरण की परिधि से बाहर होने के कारण भक्तिकालीन अन्य सम्प्रदायों में तथा रीतिकाल तथा आधुनिक काल में अंकित राधा के विविध रूपों का विवेचन यहाँ नहीं किया गया है ।

प्रस्तुत पुस्तक बारह परिच्छेदों में विभक्त है । परिच्छेद-विभाजन राधा के रूप-वैविध्य को लक्ष्य करके किया गया है । प्रथम परिच्छेद में विषय-प्रवेश, द्वितीय में ब्रजभाषा-सहित्य से पूर्व (संस्कृत, प्राकृत, मैथिली साहित्य, शिलालेख, मूर्तिकला, चित्रकला आदि में) राधा का उल्लेख और विकास, तृतीय में ब्रजभाषा-साहित्य में राधा के उद्भव और विकास का सूत्रपात, चतुर्थ में निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा, पंचम में गौड़ीय सम्प्रदाय में राधा, षष्ठ में वल्लभ-सम्प्रदाय और अष्टछाप में राधा का स्वरूप, सप्तम में राधावल्लभ-सम्प्रदाय में राधा, अष्टम में हरिदास-सम्प्रदाय में राधा, नवम में राधा के विकास में में कवयित्रियों का योग, दशम में रीतिकाल में राधा, एकादश में आधुनिक काल में राधा का अनुशीलन प्रस्तुत किया है । द्वादशवें परिच्छेद में उक्त विचारधारा का मूल्यांकन तथा उपसंहार करने का यत्न किया है ।

राधा के बिखरे रूप-चित्रों को पुस्तक रूप में पिरोना एक दुरूह समस्या थी । इस कार्य को सम्पन्न करने में जिन श्रद्धेय गुरुजनों ने उत्साह, आशीष तथा निर्देश प्रदान किये उनके प्रति अपनी कृतज्ञता किन शब्दों में व्यक्त करूँ समझ नहीं पाती । अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम होते हुए भी शब्द कितना दुर्बल साधन है, यह आज जान पाई हूँ ।

श्री भारतभूषणजी 'सरोज' तथा डा० श्री विजयेन्द्र स्नातक के के प्रति मैं अत्यन्त आभारी हूँ । स्नातकजी ने जिस उदारता के साथ अपने पुस्तक-संग्रह में से बहुत-सी सामग्री प्रदान की, उनके लिए कृतज्ञता प्रकट करना असंभव है ।

वृन्दावन-निवासी श्री स्वामी हितदास जी के प्रति भी मेरा विनम्र आभार प्रस्तुत है जिन्होंने राधा के अनेक उलझे रूपों की स्पष्ट व्याख्या करने की कृपा की ।

—उषा

विषय-सूची

बूझत स्याम कौन तू गोरी ?
कहाँ रहति, काकी है बेटो, देखो नहीं कहूं ब्रज खोरी ?
काहे कौं हम ब्रज तन आवति खेलति रहति आपनी पौरी।
सुनति रहति स्रवननि नंद-ढोटा, करत फिरत माखन दधि चोरी।
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
''सूरदास'' प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातन भुरइ राधिका भोरी॥

१

विषय प्रवेश

राधा का उद्भव

वृषभानु-नंदिनी राधा ब्रज-साहित्य की श्री-शोभा है—वह उज्ज्वल रूप की अधिष्ठात्री देवी है—भक्तों की आराध्या है, तथा विगत पाँच सौ वर्षों से वह ब्रज-साहित्य का केन्द्रबिन्दु बनी हुई है। भक्तिकालीन कवियों की भावनाओं की आलंबन, राधा, जो रीतिकाल में शृंगार के मादक रूप का आलंबन बनी, तथा आधुनिक युग में जिसने उदात्त स्वरूप को ग्रहण किया, उसका मूल बीज वैष्णव-भक्ति के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भागवतपुराण' में भी स्पष्ट रूप से लक्षित नहीं होता। यद्यपि वैष्णव सम्प्रदायों का मेरुदण्ड राधा है तथा अनेक कवियों ने उसका भावना-परक वर्णन किया, आश्चर्य है कि इतनी शोधों के उपरान्त भी निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि साहित्य में उसका आविर्भाव सर्वप्रथम कब हुआ।

यह तो निश्चित ही है कि राधा का आगमन, साहित्य में, कृष्ण के बाद ही हुआ होगा। भारतीय साहित्य में, विशेषकर हिन्दी, बँगला, गुजराती एवं मैथिली में राधा का क्रमशः विकसित रूप मिलता है। उसके उद्भव का समय निर्धारित करने के लिए संस्कृत-ग्रन्थों का अनुशीलन आवश्यक है। भारतीय भाषाओं की भाँति, भावों और विचारों का मूल भी संस्कृत में ही निहित है। राधा की उत्पत्ति के विषय में अनेक विद्वानों ने अपने मतों की स्थापना की। सम्मतियों में भेद होने के कारण कार्य दुरूहतर हो उठा। समस्त वैष्णव सम्प्रदायों में राधा की मान्यता कृष्ण की सहचरी के रूप में है; भले ही उसके स्वरूप में भेद हो। राधा के उद्गम-केन्द्र की खोज करते समय अन्वेषण के दो दृष्टिकोण सम्मुख आते हैं :

(१) ऐतिहासिक तथ्य के रूप में राधा।

(२) कल्पना के सहारे निर्मित राधा (धर्म अथवा साहित्य के क्षेत्र में)।

इतिहास-मर्मियों ने तो राधा को स्पष्ट रूप से लोक-मानस की परिकल्पना की संज्ञा प्रदान की है, किन्तु धर्म के क्षेत्र में वैष्णव सम्प्रदायों में कृष्ण की भाँति राधा भी अनादि-अनन्त है। भक्तों की मान्यता है कि उसके उद्भव को ब्रह्म की भाँति ही खोजना असम्भव है, किन्तु फिर भी अन्वेषकों ने हार न मानी। उन्होंने उसकी मूल परिकल्पना के छोर को पकड़ने का प्रयास किया।

कुछ विद्वानों ने राधा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक वेदमंत्र खोज निकाला। उस मन्त्र[१] में 'स्तोत्रं राधानां पते' पद से राधा का वेद में अनुसन्धान किया। किन्तु उन्होंने इस ओर ध्यान नहीं दिया कि इस पद में 'राधा' शब्द संज्ञा नहीं, वरन् धातु है। वैदिक युग में 'राधा' शब्द नाम के रूप में कहीं भी प्राप्त नहीं होता।[२] यह शब्द धन, अन्न, पूजा आदि शब्दों का द्योतक मात्र बनकर ही कहीं-कहीं प्रयुक्त हुआ है; किसी नारी या देवी के रूप में नहीं।

पाश्चात्य विद्वानों ने राधा के आगमन का एक दूसरा संकेत प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार पुरातन काल में सीरिया से आकर आभीर जाति ने भारत को अपना निवास-स्थान बनाया। धीरे-धीरे आर्यों से उनकी मैत्री एवं प्रगाढ़ता बढ़ती गई। सह-वास ने दोनों को एक-दूसरे के समीप ला खड़ा किया, और वे एक-दूसरे की रीतियों का अनुगमन करने लगे।[३] आभीरों की पूज्या देवी का नाम राधा था, और उनका देवता था कान्ह। आर्यों ने नित्य-कृष्ण से उनके देव का तादात्म्य करके अपने आराध्यदेव की सृष्टि की। कुछ समय पश्चात् आर्य-साहित्य में राधा ने भी प्रवेश पा लिया। यही कारण है कि प्राचीन ग्रन्थों में राधा का उल्लेख नहीं मिलता। इस मत की स्थापना में श्री भंडारकर जैसे

---

१. देखिये, ऋग्वेद—१।३०।२९।

२. देखिये, 'राधावल्लभ सम्प्रदाय—सिद्धान्त और साहित्य', पृ० १७४।

३. 'वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजियस सिस्टम्स'—डॉ० भंडारकर, पृ० ३६—३७।

विद्वान् ने भी योग दिया है। किन्तु भंडारकर के इस मत से अनेक विद्वान् सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि आभीर जाति विदेशी नहीं थी।[1]

महाभारत में आभीर एवं यदुवंशियों की घनिष्ठता का उल्लेख करते हुए यहाँ तक कहा गया है कि लक्ष सैनिकों में से अधिकांश आभीर ही थे। दूसरी ओर पंचतंत्र का एक श्लोक आभीरों की निन्दा का प्रत्यक्ष वर्णन करता है :

आभीरदेशे किल चन्द्रकान्तम् ।
त्रिभिर्वराटैर्विपणन्ति गोपाः ॥[2]

अनायास ही प्रश्न उठता है कि जब आभीर लोगों के विषय में आर्यों की इतनी हेय धारणा थी तो फिर उन्होंने उनकी देवी को क्यों अपनाया ? डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भंडारकर की पुष्टि करते हुए राधा को मूल रूप में आभीरों की देवी ही माना है, किन्तु उनके स्वदेशी एवं विदेशी होने के विषय में वे सर्वथा मौन रहे हैं।[3]

कुछ अन्य विद्वानों ने यह भी कहा कि जिस प्रकार संस्कृत-वाङ्मय में वर्षा, वायु, सागर आदि के देवताओं की मान्यता थी उसी प्रकार प्रेम की देवी के रूप में राधा को माना जाता रहा। शनैः-शनैः, विकास होने पर, वह आर्य जाति की श्रद्धा एवं पूज्य भावना के सिंहासन पर आरूढ़ हुई और कृष्ण की चिरसंगिनी के रूप में प्रतिष्ठित हो गई।

चिरकाल से भारतीय साहित्यकारों की प्रवृत्ति प्रत्येक विषय को दर्शन के क्षेत्र में खींच लाने की रही है। इसी से राधा को भी दार्शनिक दृष्टि से देखने वाले अनेक विद्वान् विद्यमान हैं। डॉ० मुंशीराम शर्मा ने सांख्यशास्त्र में उल्लिखित प्रकृति और पुरुष के रूप में राधा-कृष्ण को

---

१. विष्णुपुराण में आभीर वंश का उल्लेख है। वायुपुराण में भी आभीर राजाओं की वंशावलि वर्णित है "महाभारत में यदुवंश के साथ आभीर वंश का घनिष्ठ सम्बन्ध बताया गया है।

'—अखिल भारतीय साधना और सूर-साहित्य'—डॉ० मुंशीराम शर्मा।

२. पंचतंत्र

३. 'सूर-साहित्य'—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।

ग्रहण किया।[1] वैवर्त्तपुराण के श्रीकृष्ण-खण्ड में दिये गये—'भवार्द्धांश-स्वरूपात्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी' के आधार पर उन्होंने अपने मत का पोषण किया। दूसरी ओर ऐसे विचारकों की भी कमी नहीं जो कि राधा को तांत्रिकों के मत की परवर्ती कड़ी मानते हैं। उनके अनुसार शक्ति के विकास में ही राधा का विकास भी निहित था। अर्थात् वह शक्ति का ही रूप है। जयदेव के 'गीत-गोविन्द' पर भी वे लोग सहजयान की छाया देखते हैं। युगलोपासना पर सहजयान का प्रभाव देखने वालों के विचार में साधक लौकिक से अलौकिक रति की ओर उन्मुख होता था। इस प्रकार उन्नयनात्मक साधना का प्रचलन था किन्तु शनैः-शनैः साधना की दुरूहता ने विकारों का सृजन किया और फिर घोर कामवासना का समावेश हो गया। युगलोपासना पर सहजयान के प्रभाव का जीता-जागता प्रमाण है बंगाल के सहजिया सम्प्रदाय के सिद्धान्त, जिनमें चौरासी कोस का ब्रजमण्डल नारी की चौरासी अंगुल की काया को ही माना गया है।[2]

युगलोपासना की पद्धति में अनेक भेद होते हुए भी यह तो निश्चित ही है कि उपासकों की आधारभूत मान्यता बहुत-कुछ एक-सी है। अतः सम्भव है कि राधा की कल्पना में शाक्त मत का योग रहा हो।

वज्रयान की काया-साधना को राधा की जननी कहा गया। किन्तु उसका इससे आंशिक साम्य ही परिलक्षित होता है। सिद्धों को राधा की भावना का मूल बताने वाले यह भूल जाते हैं कि सिद्धों की स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार की काया-साधना का आधार योगवृत्ति ही रही है। यह वासना की गंध कुछ समय तक उत्तरकालीन व्यक्तियों की भोग-लिप्सा तृप्त करने का साधन भले ही रही हो, किन्तु मर्यादावादी वैष्णवों ने राधा के प्रस्तुत आधार को कहाँ तक ग्रहण किया, यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस दृष्टिकोण को सम्मुख रखते हुए तंत्र-मंत्र आदि मतों को

---

१. 'भारतीय साधना और सूर-साहित्य'—डॉ० मुंशीराम शर्मा।

२. 'ब्रजमण्डल, स्त्री के चौरासी अंगुल के शरीर के अतिरिक्त और कुछ नहीं, और, ब्रज की पंचकोशी, उसका पंचांगुल-परिमित अंग-विशेष है।''

'सूर और उनका साहित्य'—डॉ० हरवंशलाल शर्मा, पृ० २६६।

मूल उद्भव-स्थल मान बैठना समीचीन प्रतीत नहीं होता। यदि यह भी मान लें कि तान्त्रिकों की नारी के प्रति विलासी दृष्टि और शाक्त मत में नारी-तत्त्व की अनिवार्यता का ही थोड़ा परिष्कृत रूप राधा की भावना है, तब भी यह तो मानना ही होगा कि नारी-तत्त्व के आधिक्य को उपर्युक्त दोनों मतों ने किसी पुरातन प्रवाहित विचारधारा से ही ग्रहण किया होगा। उनकी मौलिक उद्भावना तो राधा के उद्भव का कारण हो ही नहीं सकती—भले ही अपनी मान्यता के अनुसार उन्होंने राधा के विभिन्न स्वरूपों का निर्माण किया हो। प्रस्तुत भ्रांति का मूल कारण यह है कि जहाँ कहीं भी साहित्य में सखी-भाव के संकेत मिलते हैं, उसे वैष्णव सम्प्रदाय पर घटाना कुछ कठिन नहीं रहता।

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने भी कश्मीरी और शैव दर्शन का विचार-विनिमय करते हुए प्रेमलक्षणा-भक्ति पर शैव भावना का आरोप किया है :

"ऊपर के तीन सिद्धान्त लिये गये हैं, उनका स्वरूप आगम-शास्त्रों में विस्तारपूर्वक वर्णित है। तीन मार्ग ही त्रिविध उपास्य-स्वरूप हैं। क्रमशः आणवोपाय, शम्भवोपाय और शाक्तोपाय के साथ इनका कुछ अंश में सादृश्य जान पड़ता है। दूसरा सिद्धान्त भारत में बहुत दिनों का परिचित मत है। इस मत के भगवान् सौन्दर्यस्वरूप और चिर सुन्दर हैं—आनन्दस्वरूप और आनन्दमय हैं। सूफ़ी लोग नर-रूप में उसकी पराकाष्ठा देख पाते हैं। जिन लोगों ने सूफ़ी लोगों की काव्य-ग्रन्थ माला का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि सूफ़ी सुन्दर नर-मूर्ति की उपासना, ध्यान और सेवा करना ही परमानन्द-प्राप्ति का साधन मानते हैं। इतना ही नहीं, वे कहते हैं कि मूर्त किशोरावस्था ही तो रसस्फूर्ति में सहायक होती है। किसी के मत में पुरुष-मूर्ति श्रेष्ठ है तो किसी के मत में रमणी-मूर्ति श्रेष्ठ है। परन्तु सूफ़ी लोग कहते हैं कि इस वस्तु में पुरुष-प्रकृति भेद नहीं है। वह अभेद-तत्त्व है। यही क्यों, उनके गज़ल, रुबाइयात, मसनवी आदि में जो वर्णन मिलता है, उससे किशोर वयस्क पुरुष किंवा किशोर वयस्का स्त्री के प्रसंग का निर्णय नहीं किया जा सकता···आगम भी क्या ठीक बात नहीं कहते ? नटनानन्द नाथ या चिद्वल्ली या कामकला की टीका

में कहते हैं कि जिस प्रकार कोई अति सुन्दर राजा अपने सामने के दर्पण में अपने ही प्रतिबिम्ब को देखकर उस प्रतिबिम्ब को 'मैं' समझता है, परमेश्वर भी इसी प्रकार अपने ही अधीन आत्मशक्ति को देख 'मैं पूर्ण हूँ' इस प्रकार आत्मस्वरूप को जानते हैं। यही पूर्ण अहंता है···

···यह चमत्कार ही पूर्णहंता चमत्कार है। काम या प्रेम इसी का प्रकाश है। यही शिव-शक्ति सम्मेलन का प्रयोजन और कार्यस्वरूप है—यही रस या शृंगार रस है। विश्व-सृष्टि के मूल में ही यह रस-तत्त्व प्रतिष्ठित है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन में जो पैंतीस और छत्तीस तत्त्व अथवा शक्ति और शिव हैं—त्रिपुरा-सिद्धान्त में वही कामेश्वर और कामेश्वरी हैं। और गौड़ीय वैष्णव दर्शन में वही श्रीकृष्ण और राधा हैं। कामेश्वर-कामेश्वरी, कृष्ण-राधा एक और अभिन्न हैं। यही चरम वस्तु त्रिपुरा मत में सुन्दरी अथवा त्रिपुरा सुन्दरी है··· इस सुन्दरी के उपासक इसकी उपासना चन्द्र-रूप में करते हैं। चन्द्र की सोलह कलाएँ हैं। सभी कलाएँ नित्य हैं, इसलिए सम्मिलित भाव से इनका नित्य षोडशी के नाम से वर्णन किया जाता है। पहली पन्द्रह कलाओं का उदय-अस्त होता रहता है, सोलहवीं का नहीं। वही अमृत नाम की चन्द्र-कला है। वैयाकरण इसी को 'पश्यन्ती' कहते हैं। दर्शनशास्त्र में इसका पारिभाषिक नाम आस्था है। मंत्रशास्त्र में इसी को मन्त्र या देवताओं का स्वरूप कहा गया है।[1]

ज्योतिषशास्त्र में राधा

सबसे अधिक रोचक कल्पना तो ज्योतिषशास्त्रियों की है। वे लोग सम्पूर्ण राधा तत्त्व को ज्योतिषपिंडों पर घटाते हैं तथा राधा का मूलाधार ज्योतिषशास्त्र को ही मानते हैं।

वैदिक वाङ्मय में 'विष्णु' प्रचुर मात्रा में 'सूर्य' के पर्याय रूप में प्रयुक्त हुआ है। अतः 'सूर्य' को 'विष्णु' का पर्याय मानकर वे लोग प्रातः, मध्याह्न और संध्या को तीन गति एवं तत्त्व मानकर चलते हैं।

१. कल्याण (शिवांक)
'कश्मीरी शैव दर्शन के सम्बन्ध में कुछ बातें'—कविराज गोपीनाथ, गीता प्रेस, गोरखपुर।

लीलाओं को नक्षत्रों पर घटाकर वे लोग 'विशाखा' नक्षत्र को राधा का पर्याय मानते हैं। अथर्ववेद में 'राधोविशाखे' पद में स्पष्ट रूप से दोनों का एक अर्थ में प्रयोग किया गया है। यजुर्वेद में विशाखा और अनुराधा नक्षत्रों का उल्लेख है। प्रस्तुत मतवादी अनुराधा को राधा (विशाखा) की सखी मानते हैं। मूल शब्द तो राधा ही था, बीच में जाने क्यों बदलकर विशाखा रख दिया गया। कार्तिक मास की पूर्णिमा को सूर्य (नारायण) विशाखा (राधा) नक्षत्र में ठहरता है। सूर्य की किरणों में समा जाने के कारण सारे नक्षत्र नहीं दीख पड़ते। अतः इस प्रकार रासलीला के दिन राधा-कृष्ण के विहार को यह मत ध्वनित करता है। वृषभानु की पुत्री का तात्पर्य वृष राशि से है। कृत्तिका वृषराशि में ठहरती है, अतः उसी का विकृत रूप कार्तिका (राधा की माँ का नाम) पद्मपुराण में मिलता है। संस्कृत-साहित्य में दिये गए राधा की सखियों के नाम ज्येष्ठा, तारिका आदि तथा कृष्ण की पत्नियों रोहिणी, रेवती एवं बहन चित्रा के नाम भी ज्योतिषशास्त्रपरक हैं।[1] 'गोप' शब्द को 'सूर्य' का पर्याय मानते हुए कहा गया कि 'गो' शब्द का एक अर्थ गाय तथा दूसरा 'रश्मि' भी होता है। अतः 'सूर्य' 'गोप' तथा 'तारिका' 'गोपी' है।[2] यद्यपि इतने नामों के साम्य एवं रोचक रूपक को पूर्ण रूप से निराधार नहीं कहा जा सकता तो भी सहस्र वर्षों से भक्ति के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले राधा-तत्त्व को नक्षत्र-विद्या में ही सीमित कर देना न्यायपूर्ण नहीं जान पड़ता। पौराणिक काल में इस रूपक को भक्ति-क्षेत्र में स्थान मिलता रहा।

दक्षिण के आलवार भक्तों में कृष्ण को पूज्य पुरुष मानकर उसकी आराधना स्त्री-भाव से की जाती थी। कृष्ण के साथ एक प्रमुख गोपी का उल्लेख इस मत के प्राप्त ४००० पदों में स्पष्ट दृष्टिगत होता है। इस गोपिका का नाम नप्पिनाई है। उसकी कृष्ण से अत्यन्त आत्मीयता है। वह कृष्ण के साथ विहार करती है। 'कुरवइकूट्टु' नामक एक प्रकार के नृत्य-विशेष का भी इसी लीला-प्रसंग में उल्लेख है। कृष्ण को

---

१. देखिये, 'भारतवर्ष' (पत्र), माघ १३४ बंगाब्द।

२. देखिये, 'राधा का क्रमिक विकास' : शशिभूषणदास गुप्त, पृ० ११६-१७।

भी इसमें भाग लेने वाला बताया गया है। इन भक्तों का युग ईसा की पाँचवीं से नवीं शती तक माना गया। अतः पाँचवीं-छठी शती में युगल भक्ति का कोई-न-कोई सूत्र अवश्य रहा होगा जो उत्तरोत्तर स्पष्ट होता गया।[1]

साहित्य में रायण-पत्नी को राधा ही माना है। अध्ययनकर्ताओं के विचार में रायण उसके पति का नाम था। कुछ ने 'नारायण' का विकृत नाम 'रायण' मानकर राधा को 'लक्ष्मी' की उपाधि से भी विभूषित किया। कुछ अन्य विचारकों का कहना है कि एक गोपी विशेष आराधना करती थी। उसकी तन्मयता के कारण आराधना के आधार पर उसका नाम राधा रख दिया गया। दूसरा मन्तव्य यह भी है कि राधा का निर्माण 'राध्' धातु से हुआ है, जिसका तात्पर्य है प्रसन्नता-दायिनी। क्योंकि वह कृष्ण को प्रसन्न करती थी, इसी से वह राधा कहलायी।

राधा की उत्पत्ति के विषय में अनेक मान्यताओं पर दृष्टिपात करके यदि किसी निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं तो यही कि प्रारम्भ में राधा कोई नारी नहीं थी, वह एक भावना मात्र थी। शिव के साथ पार्वती, राम के साथ सीता की भावनाएँ पुरातन काल से चली आ रही थीं। मानव सामाजिक प्राणी है, उसने अपने देवी-देवताओं में भी पारिवारिक भावना को ढूँढ़ना चाहा क्योंकि तभी पूर्ण समर्पण एवं तादात्म्य सम्भव हो सकता था। दाम्पत्य के दो पहियों, नर और नारी, की अनिवार्यता को अनुभव करते हुए उन्होंने देवी-देवताओं को भी एक-दूसरे का पूरक मानकर आराधना की।

योगिराज कृष्ण का विशद वर्णन पुरातन वाङ्मय में प्राप्त है किन्तु भागवतपुराण से पूर्व राधा अथवा गोपलीला का वर्णन नहीं मिलता। उस युग तक कृष्ण आराध्य भले ही रहे हों किन्तु वे मर्यादावादी योगिराज के रूप में ही विख्यात थे।

उत्तरोत्तर भक्तों ने देखा कि परकीया-प्रेम की उत्कट विरह-भावना स्वकीया में नहीं टिक पाती क्योंकि निरन्तर सामाजिक सान्निध्य उस

---

१. देखिये, 'राधा का क्रमिक विकास' : शशिभूषणदास गुप्त, पृ० ११६-१७।

की तीव्रता को बहा ले जाता है। अतः उन्हें एक ऐसे देव की आवश्यकता अनुभव हुई जिसकी आराधना या तो स्वयं ही परकीया भाव से कर सकें, अथवा किसी परकीया माध्यम का छोर ही पकड़कर तर जायें। इसी कारण सम्भवतः उन्होंने कृष्ण की परिणीता रुक्मिणी का त्याग करके राधा की भावना का आरोप किया। और इस प्रकार अपनी भावना के अनुसार कृष्ण को गोपालक, नटवर, लीलामय, नटखट, घनश्याम के रूप में ढाल लिया। उसी नटवर-लीलामय कृष्ण की प्रेयसी राधा बनी, जिसका जीवन विरह की अग्नि में ही तप्त होता रहा। किसी कवि ने तपाकर उसे स्वर्ण बना दिया है तो किसी ने गर्त में ढकेल दिया। यह तो कवि के अपने व्यक्तित्व पर आश्रित था।

धीरे-धीरे यह अमूर्त राधा मूर्त तथा स्पष्टतर रूप धारण करती गई और अधिकांश कृष्ण-काव्य पर छा गई। इतना प्रचार होने के पश्चात् अन्वेषकों ने उसका मूल उद्भव-स्थल खोज निकालने के लिए दौड़-धूप आरम्भ की किन्तु तब तक उसका स्वरूप इतना व्यापक हो गया था कि सबको वह अपनी ही लगने लगी। दार्शनिकता में पहुँचकर उसकी रूप-रेखा कुछ अस्पष्ट हो गई। फिर भी इतना तो स्पष्ट ही है कि भारतीय समाज में यदुवंशी कृष्ण के साथ राधा की रासलीला तथा उसकी भावना का प्रचार सर्वप्रथम ई० पू० चौथी शताब्दी में दृष्टिगत होता है। उत्तरोत्तर वह इतनी प्रसिद्ध हो गई कि उसके अभाव में कृष्ण का व्यक्तित्व अधूरा-सा ही अनुभव होने लगा। आज राधा और कृष्ण परस्पर पूरक के रूप में ही साहित्य में दृष्टिगत होते हैं—उन्हें विलग करना कठिन ही नहीं, असम्भव है।

शिलालेखों में राधा

ईसापूर्व दो सौ वर्ष तक कृष्णलीला-सम्बन्धी कोई शिलालेख नहीं मिलता। ईसा के बाद चौथी शताब्दी के पश्चात् ही कृष्ण के चरित्र एवं लीला-सम्बन्धी शिलालेख एवं प्रस्तर-प्रतिमाएँ मिलनी आरम्भ होती हैं।

उसका प्राचीनतम संकेत मंदसौर के मन्दिर के द्वार पर बने स्तम्भ से मिलता है। जो कुछ प्राप्त है, उसे गोवर्धन-लीला का दृश्य कहा जा सकता

है। गोपियों और माखन की मटकियों का दृश्य इस बात का द्योतक है कि समाज में राधा-कृष्ण की काफी प्रसिद्धि हो चुकी थी। बंगाल के पहाड़पुरा की खुदाई में कृष्ण के साथ प्राप्त गोपी को श्री चाटुर्ज्या राधा बताते हैं। अतः पाँचवीं शताब्दी तक राधा समाज में व्यापक ख्याति पा चुकी होगी। यदि इसे राधा मानें तो इसकी पूजा का काल बहुत पीछे ले जाना होगा, जो कुछ असंगत नहीं जान पड़ता। महाबलिपुरम् का उत्कीर्ण प्रस्तर-खण्ड इसका प्रतीक है कि गोवर्धन-लीलाएँ पर्याप्त प्रचलित थीं।

सातवीं शताब्दी की बादामी की लीलाओं में कृष्ण-केलि का प्रचुर अंकन प्राप्त है।

चिंतामणि विनायक वैद्य के अनुसार छठी-सातवीं शताब्दी तक राधा का उदय नहीं हुआ था। प्रेमलक्षणा-भक्ति के बाद ही राधा की भावना ने पदार्पण किया। किन्तु इस मन्तव्य का कोई ठोस आधार नहीं है, क्योंकि जयदेव और विद्यापति के युग तक प्रेमलक्षणा-भक्ति का रूप स्थिर नहीं हुआ था, किन्तु राधा की भावना विद्यमान थी।[1]

श्री भंडारकर ने बारहवीं शताब्दी के एक शिलालेख का रोचक विवरण दिया है। केशव के पुत्र भानु ने पांडुरंगपुर में आप्तोरयाम यज्ञ किया तथा एक शिलालेख की स्थापना की। शिलालेख के अनुसार आधुनिक पंढरपुर का नाम पांडुरंगपुर भी था। यह स्थान भीमा नदी पर स्थित है तथा पंढरपुर में स्थित विठोबा महाराष्ट्र में वैष्णव सम्प्रदाय का केन्द्र है। वहाँ प्रसिद्ध एवं प्राचीनतम मन्दिर विष्णु का है।

कुछ विद्वानों की मान्यता है कि विष्णु का ही विकृत नाम विट्ठू और फिर विट्ठल पड़ा। किन्तु हेमचन्द्र ने कहा कि पहले वहाँ शिवाराधना होती थी—विष्णु का महत्त्व बढ़ने के साथ-साथ शिव गौण पड़ते गये, फिर विष्णु का ही मन्दिर बना रह गया। शिलालेख में जो पुंडरीक नाम पड़ा है वह सम्भवतः पुंडरीक नामक भक्त के आधार पर

---

१. देखिये, 'हिस्ट्री ऑफ मेडीवल हिन्दू इण्डिया' (खण्ड ३)
—चिन्तामणि विनायक वैद्य, पृ० ४१५।

ही पड़ा। भक्त पुंडरीक क विषय में शिलालेख में दी गई कथा इस प्रकार है :

"पंढरपुर के पास डिडिरायण नामक वन में वह अपना समय वृद्ध माता-पिता की सेवा में व्यतीत करता था। उसकी इस सेवा एवं श्रद्धा-भक्ति और कर्त्तव्यपरायणता से कृष्ण अत्यन्त प्रसन्न थे। उन दिनों कृष्ण द्वारका में रहते थे। बालसंगिनी राधा की सुमधुर स्मृति उन्हें सदैव विह्वल रखती, पर उसे विस्मृत करना भी असंभव था। ऐसे ही एक दिन हिमालय पर तपस्या करती हुई राधा ने अपने योग से कृष्ण की आतुरता को जाना, तो तुरन्त उनके सम्मुख उपस्थित होकर उनके अंक में जा बैठी। कुछ क्षण पश्चात् कृष्ण की विवाहिता पत्नी रुक्मिणी ने कक्ष में प्रवेश किया—किन्तु अन्य नारियों की भाँति राधा के आदरार्थ खड़े न होने से रुक्मिणी रुष्ट होकर चली गई तथा पंढरपुर में वास करने लगी। कृष्ण उसको खोजते हुए वहाँ पहुँचे। दोनों में सुलह हो जाने पर वे पुंडरीक की कुटिया में दर्शन देने गये। पुंडरीक माता-पिता की सेवा में व्यस्त था। उसने कृष्ण के खड़े होने के लिए एक शिला दी। जिस स्थान पर वे खड़े थे, वहीं इस मन्दिर का निर्माण किया गया है।"

संत नामदेव और तुकाराम का मत है कि पुंडरीक ने ही विट्ठल-सम्प्रदाय की नींव रखी। महाराष्ट्र में आज भी कृष्ण के साथ उनकी विवाहिता पत्नी रुक्मिणी की अर्चना होती है, जब कि उत्तर भारत में राधा की। इसी से दक्षिण का वैष्णव सम्प्रदाय उत्तर की अपेक्षा कहीं अधिक संयत एवं सौम्य भावना लिये है—उसमें वासना की बू नहीं है।[1]

---

१. 'वैष्णविज़्म, शैविज़्म एण्ड अदर रिलीजियस सिस्टम्स ऑफ़ इण्डिया'
—डॉ० भंडारकर।

२

ब्रज-साहित्य से पूर्व राधा का उल्लेख और विकास

उल्लेख

यद्यपि सर्वांगीण रूप में राधा का विवेचन सर्वप्रथम पुराणों में ही उपलब्ध होता है किन्तु उनसे पूर्व भी व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में 'राधा' शब्द का उल्लेख विविध ग्रन्थों में उपलब्ध है, यद्यपि इससे उसके चारित्रिक विकास का कोई स्वरूप निश्चित नहीं हुआ था।

डॉ० हरवंशलाल शर्मा की सम्मति में प्रथम शताब्दी की प्राकृत-रचना गाहा सतसई (हाल) एवं पाँचवीं शताब्दी के पंचतंत्र में भी 'राधा' शब्द के उल्लेख दृष्टिगत होते हैं—यद्यपि कोई विशद वर्णन नहीं मिलता। वह एक सामान्य गोपिका थी—कोई विशेष महत्त्व उसे प्रदान नहीं किया गया। फिर भी गाहा-सतसई का एक श्लोक उस समय के राधा के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालता है :

मुहमारुपण तं कह्न गोर अं शहि आएं अवणेन्तो
एताणं वलवीणं अराणाणं वि गोरुअं हरसि।[1]

—अर्थात्, हे कृष्ण, तुम राधा के नेत्रों की धूलि को अपने मुँह की वायु से दूर कर दूसरी स्त्रियों का अभिमान-विमोचन करते हो, या उनकी गोराई को दूर करते हो—वे दुःख से काली पड़ जाती हैं।

स्पष्ट है कि राधा का धार्मिक रूप निश्चित नहीं हुआ था—वह लोक-कथाओं की प्रसिद्ध नायिका थी।

भट्टनारायण के 'वेणीसंहार' में आठवीं शताब्दी में राधा,

---

१. गाहा-सतसई—हाल।

रसिक कृष्ण की प्रेयसी के रूप में अंकित है। उत्तरकालीन साहित्य में राधा के स्वरूपांकन का मार्ग निश्चित करने के कारण यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। राधा का मान और कृष्ण का राधा को मनाना, और उसके पीछे-पीछे कालिन्दी-तट आदि पर घूमने-फिरने का सुन्दर वर्णन द्रष्टव्य है :

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसम्
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽत्र कलुषां कंसद्विषां राधिकाम् ।
तत्पाद प्रतिभानिवेशित पदस्योद्भूतरोमोद्गते—
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्ठस्य पुष्णातु वः ॥[1]

आनन्दवर्धन के 'ध्वन्यालोक' तथा कुन्तक के 'वक्रोक्तिजीवितम्' में भी राधा का वर्णन मिलता है। कृष्ण के साथ राधिका नित्यप्रति ही क्रीड़ा करती है, गीत गाती है, हँसती है।

दसवीं शताब्दी में विक्रमभट्ट के 'नलचंपू', वल्लभदेव कश्मीरी के 'शिशुपालवध' तथा धनंजय के 'दशरूपक' एवं 'कवीन्द्रवचन-समुच्चय' में भी राधा-विषयक श्लोक दृष्टिगत होते हैं।

ग्यारहवीं शताब्दी में भोजराज ने कतिपय श्लोक उद्धृत किये। अतः उनसे पूर्व राधा के अनेक रूप साहित्य में स्थान पा चुके थे। क्षेमेन्द्र ने 'दशावतारचरित' में राधा का शृंगारिक वर्णन किया है। हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' में राधा-विषयक दो शृंगारपरक श्लोकों का उद्धरण दिया है।

कहा जाता है कि रामचन्द्र के 'नाट्यदर्पण' में राधा का विरह-वर्णन था, जो अब उपलब्ध नहीं। पर यह स्पष्ट है कि राधा के विरह से जनसाधारण परिचित था।

तेरहवीं शताब्दी तक पहुँचते-पहुँचते राधा और कृष्ण का स्वरूप निखर आया। इनका चरित्र स्पष्ट हो गया और फिर तो निरन्तर शृंगार की पृष्ठभूमि में राधा-कृष्ण का वर्णन होता रहा। प्राकृत में भी राधा का यही रूप अपनाया गया।

---

१. वेणीसंहार—भट्टनारायण, अंक १, दृश्य १।

संस्कृत से प्राकृत तथा अपभ्रंश में होता हुआ युगलदेव का चरित्र हिन्दी में पहुँचा, तब से कृष्णप्रिया का निरन्तर विकासमय चरित्र साहित्य के अधिकाधिक भाग पर छाता चला गया । ब्रज-साहित्य की तो ७५ प्रतिशत रचनाएँ कृष्ण के प्रेम में विभोर राधा का वर्णनमात्र हैं ।

राधा-माधव के यौवन-विलास का जो स्वरूप अपभ्रंश-काव्य में मुखरित हुआ उसकी आधारशिला संस्कृत-साहित्य में कितने ही वर्ष पूर्व रखी जा चुकी थी । ग्रन्थों में 'राधा' नामोल्लेख तक ही सीमित नहीं रही, अपितु उसके स्वरूप का विकास भी उपर्युक्त दोनों भाषाओं में आरम्भ हो चुका था ।

संस्कृत के पुरातन ग्रंथ पुराण हैं जिनमें क्रमशः युगलोपासना का सूत्रपात होता गया । उसी साहित्य में सर्वप्रथम राधा का व्यापक प्रचार दृष्टिगत होता है । इनसे पूर्व वैयाकरणों एवं काव्यशास्त्रियों ने राधा के चरित्र का सर्वांगीण वर्णन नहीं किया था । उपेक्षा की तमोमय गुहा से निकाल कर राधा को आलोकित क्षेत्र प्रदान करने का श्रेय पुराणों को ही है । अठारह पुराणों में से कुछेक में ही राधा का वर्णन प्राप्त होता है । वैष्णव-भक्ति के मेरुदण्ड भागवतपुराण में श्रीकृष्ण की रूप-लीला के विशद वर्णन में राधा का पूर्णाभाव था, किन्तु वहीं एक विशिष्ट गोपिका का उल्लेख अवश्य प्राप्त होता है :

"अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतोयामनमद्रहः ॥"

(भागवतपुराण—१० : ३० : ३८)

अंग्रेज़ विद्वान् जे० एन० फ़र्क़ुहर ने राधा-भक्ति का मूल उद्भव भागवत के प्रस्तुत प्रसंग से ही माना है । उनके अनुसार, अनुमानतः इसी विशिष्ट गोपिका का नाम पीछे से राधा पड़ा ।[1] श्री सनातन गोस्वामी आदि ने भागवत के इस पद की विभिन्न दृष्टिकोणों से व्याख्या की । द्वितीय स्कन्ध में प्रयुक्त 'राधिका' को भी खींच-तानकर राधा पर घटाने का यत्न किया गया। किन्तु जहाँ कहीं भी भागवत में 'राधा' शब्द

---

१. 'एन आउट लाइन ऑफ रिलीजियस लिटरेचर ऑफ इण्डिया'
—जे० एन० फ़र्क़ुहर, पृष्ठ २३७।

का प्रयोग है, उसका आशय पूजा-वैभव आदि भावों को व्यक्त करने का है। नारी का द्योतक बनकर यह शब्द कहीं भी प्रयुक्त नहीं हुआ।

मूल उद्भव संदिग्ध होने पर भी फ़र्कुहर का कहना है कि 'राध्' धातु का तात्पर्य है प्रसन्न रहना और इसी अर्थ को लेकर सर्वप्रथम राधा की भावना का आरम्भ हुआ। यद्यपि इतिहास इसको पुष्ट नहीं करता, फिर भी वैष्णव मतवादियों का धार्मिक हृदय भागवत में राधा का अस्तित्व मानता है। सम्भवतः ब्रह्म से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की शक्ति के आधार पर ही आंग्ल विद्वानों ने ऐसे मत की स्थापना की है।

पुराणों में राधा

प्रोफेसर विलसन ने ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के आधार पर राधा-कृष्ण की व्याख्या की। उनके अनुसार राधा कृष्ण की शक्ति है—वह कृष्ण की प्रेयसी है और ये शक्ति और शक्तिमान गो-लोक में विहार करते हैं। वे राधा की भावना को अर्वाचीन मानते हैं क्योंकि भागवत तक में उसका स्पष्ट उल्लेख नहीं था।[1]

मोनियर विलियम्स ने वैष्णव-भक्ति का उल्लेख करते हुए पूजा-उपासना को पौराणिक युग की निधि बताया है। वे जीव की परमात्मा से तादात्म्य करने की इच्छा को राधा मानकर चले और कहा कि इसी कारण उत्तरकाल में निम्बार्क-सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण दोनों की उपासना होती रही, तथा राधा को कृष्ण की स्वामिनी भी बताया गया।

सेव्य-सेवक, मित्र-प्रेम, वात्सल्य-प्रेम तथा श्रृंगार-प्रेम-इन चारों प्रकार के कृष्ण-सम्बन्धित प्रेम में से श्रृंगार-प्रेम को ही ब्रह्मवैवर्त्त में लिया गया है। कृष्ण की श्रृंगारिक लीलाओं का वर्णन सर्वप्रथम हरि-वंशपुराण में दृष्टिगत हुआ किन्तु उसमें राधा का उल्लेख नहीं था।

१. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में राधा के नामोच्चारण मात्र में अनन्त माहात्म्य के दर्शन कराये गये हैं :

---

१. 'हिन्दू रिलीजियंस'—प्रो० विलसन, पृष्ठ ११३-११४।

र्—कोटि जन्मों के अंधे शुभाशुभ कर्मफलों को दूर करता है।
आ—मृत्यु, गर्भवास, रोगों से मुक्त करता है।
ध्—आयु की हानि से बचाता है।
आ—भव-बंधन से मुक्ति प्रदान करता है।

रेफो हि कोटिजन्मांधकर्म भोगशुभाशुभम्।
आकारो गर्भवासं च मृत्युं च रोगमुत्सृजम्॥
धकारो ह्यायुर्षो हानिमाकारो भवबंधनम्।

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, कृष्णजन्म-खण्ड, अध्याय १३)

इसमें वर्णित राधा कृष्ण के पार्श्व से उत्पन्न होकर उसकी आराधना में लीन हो गई। उसके रोम-कूपों से अनेक गोपिकाओं एवं कृष्ण के रोम-कूपों से अनेक गोपों की उत्पत्ति हुई। इस उत्पत्ति को दिव्य नित्य माना गया। रमण करने की इच्छा से धावन करने के कारण उसका नाम राधा पड़ा। वृषभानुसुता के रूप में जब रायण से उसका विवाह हुआ तो वह अपनी छाया को उसके पास छोड़ स्वयं लीला में रत हो गई। राधा-कृष्ण की लीला, स्वरूप तथा सम्बन्ध के विषय में वैष्णव सम्प्रदायों में विशेषकर गौड़ीय वैष्णव, वल्लभ मत तथा राधावल्लभीय मतों में जिन साधनभूत रहस्यों का आजकल प्रचार है, उनका मूल ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण में उपलब्ध होता है।

राधा गो-लोक (बैकुण्ठ) में भगवान श्रीकृष्ण की हृदयेश्वरी प्राणवल्लभा है। श्रीदामा के शाप से राधा इस भूतल पर अवतीर्ण होती है। इस पुराण में कृष्ण और राधा के विवाह का वर्णन है। अतः वह कृष्ण की स्वकीया है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। सबसे बड़ी विशेषता इसकी यह है कि यहाँ राधा लौकिक दृष्टि से कृष्ण से बड़ी हैं। मार्ग में उसके साथ क्रीड़ा करते कृष्ण उसे अपने विराट् रूप के दर्शन कराते हैं तथा ब्रह्मा प्रकट होकर दोनों का विवाह करा देते हैं।

पद्मपुराण के उत्तर-खण्ड में राधाष्टमी के व्रत का उल्लेख है जो उनकी महत्ता का प्रदर्शन करता है। राधा-पूजा एवं राधा-भक्ति का रूप धीरे-धीरे अलौकिकता खो बैठा। रूपगोस्वामी तथा श्रीकृष्णदास

कविराज ने इस पुराण का युगलोपासना-विषयक एक श्लोक उद्धृत किया :

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा ।
सर्वगोपीषु सैवेका विष्णोरत्यन्तवल्लभा ॥

किन्तु फ़र्कुहर ने इसे सोलहवीं शताब्दी की रचना बताया । राधाष्टमी व्रत का महत्त्व दर्शाते हुए वहाँ एक वेश्या के उद्धार की कथा भी लिखी गई है । इस वर्णन से यह भी जान पड़ता है कि जब विष्णु पृथ्वी का भार हरने के लिए अवतरित हुए, तब राधा भी उनके आदेश से पाप-हरण के लिए अवतीर्ण हुई । इस प्रकार वह भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में वृषभानु की यज्ञभूमि में उत्पन्न हुई । पद्मपुराण के पाताल-खण्ड में राधा के विविध रूपों के विवरण मिलते हैं । इस खण्ड के अड़तालीसवें अध्याय में बताया गया है कि गोकुल सहस्रदल कमल है । इसके साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि उसके कौन-से दल में कृष्ण की कौन-सी लीलाभूमि है, तथा कृष्ण की वल्लभा (प्रकृति) उन्हें विशेष प्रिय है ।[1]

मत्स्यपुराण के एक श्लोकार्ध में राधा का उल्लेख अवश्य मिलता है, जहाँ पर कहा गया है कि राधा वृन्दावन में है तथा रुक्मिणी द्वारावती में । प्रश्न उठता है कि इसे प्रामाणिक मानना कहाँ तक समीचीन है—जबकि उक्त ग्रन्थ में कृष्ण की लीलाओं का पूर्णाभाव है ।

इसी प्रकार वायुपुराण, वाराहपुराण, आदिपुराण, नारदीय प्रभृति पुराणों में एकाध श्लोक में राधा का उल्लेख मिलता है; इनमें कौन-सा ठीक है और कौन-सा प्रक्षिप्त, यह निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता ।[2] यद्यपि राधा का सबसे अधिक स्पष्ट और विस्तृत वर्णन ब्रह्मववर्त्त पुराण में ही मिलता है, किन्तु खेद है कि उसकी प्रामाणिकता का ठोस आधार ही प्राप्त नहीं है । बंकिमचन्द्र ने 'कृष्णचरित्र' में लिखा है :

"इसकी रचना-प्रणाली आजकल के भट्टाचार्यों-जैसी है । इसमें

१. 'राधा का क्रमिक विकास' : शशिभूषणदास गुप्त, पृ० १०७ ।

२. वही : पृ० ११२ ।

षष्ठी, मनसा की कथा भी है।" पुराणों में राधा के विभिन्न नामों का उल्लेख मिलता है, जिनमें से सोलह नाम मुख्य हैं :

राधा, राजेश्वरी, रासवासिनी, रसिकेश्वरी, कृष्णप्राणाधिका, कृष्णप्रिया, कृष्णस्वरूपिणी, कृष्णवामांशसंभूता, परमानन्दरूपिणी, कृष्णा, वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दावनविनोदिनी, चंद्रावली, चन्द्रकान्ता और शतचन्द्रनिभानना।

देवी भागवत में राधा का वर्णन प्रतीक के रूप में हुआ है। वहाँ राधा के मन्त्र का विस्तार एवं उसकी आराधना का विशद वर्णन प्राप्त है। तदनुसार चिन्मयी भुवनेश्वरी मूल प्रकृतिरूपिणी को जब सृष्टि रचने की इच्छा हुई तो राधा प्राण की एवं दुर्गा बुद्धि की देवी के रूप में थीं। इसी से 'श्री राधायै स्वाहा' का षडक्षर मंत्र उसकी उपासना के लिए निर्मित किया गया। राधा की अर्चना के उपरान्त ही भक्त को कृष्ण-पूजा करने का अधिकार प्राप्त होता था।

राधिकोपनिषद् में राधा प्रतीक-रूप में सम्मुख आती है। सनकादि महर्षियों ने कृष्ण को ही नित्य और वृन्दावन के अधीश्वर, ऐश्वर्यों से पूर्ण परमदेव की संज्ञा दी। उनकी आह्लादिनी, संधिनी, इच्छा, ज्ञान, क्रिया आदि अनेक शक्तियाँ हैं। आह्लादिनी मुख्य है एवं उसी को राधा कहा गया है। श्रीकृष्ण राधा की आराधना करते थे अथवा राधा कृष्ण की, यह संदिग्ध है; फिर भी आराधना करने से ही राधा नाम पड़ा। राधा, वास्तव में कृष्ण की ही एक शक्ति है—क्रीड़ा के हेतु दोनों ने पृथक् अस्तित्व की स्थापना की। जो राधा की अवहेलना करके कृष्ण की उपासना करना चाहते हैं, वे मूर्ख हैं।

पौराणिक आधार लेकर ही मध्ययुग की उपासना में राधा स्थान पा सकी, इससे पूर्व कृष्णभक्ति में उसके लिए स्थान नहीं था।

जयदेव

काव्य के चमत्कार और भाषा के माधुर्य से रंजिता राधा को भक्ति के क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने का श्रेय जयदेव को है। जयदेव का 'गीत-गोविन्द' कई स्थलों पर ब्रह्मवैवर्त्त पुराण की-सी झलक लिये दृष्टिगत होता है। किन्तु फिर भी निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि

दोनों में से किसका प्रभाव दूसरी रचना पर है, क्योंकि कौन-सी रचना पूर्वकाल की है, कहना कठिन है।

जयदेव ने संस्कृत की कोमल-कान्त पदावलि में राधा-माधव की विलास-केलि का विशद वर्णन किया है। उन्होंने रूप-सौन्दर्य पर ही विशेष ध्यान दिया। राधा कृष्ण की प्रेयसी के रूप में ही पाठकों के सम्मुख आती है। जयदेव भी उसे शक्ति एवं लक्ष्मी का रूप देकर अपने काव्य को अध्यात्म की चुनरी से ढकने में प्रयत्नशील नहीं रहे हैं, फिर भी उनकी-भावना में भक्ति-भाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। शील-मर्यादा की ओर भी कवि का ध्यान नहीं रहा है। उनके पदों में सूक्ष्म उद्भावनाओं की अपेक्षा मांसल वर्णन ही अधिक है। सम्भवतः इसका कारण उनका आधार, ब्रह्मवैवर्तपुराण, हो। भक्ति एवं साहित्य के विस्तृत पटल पर राधा का चित्रांकन सर्वप्रथम उन्हीं की तूलिका से हुआ, इसी से उनकी रचना महत्त्वपूर्ण है।

विद्यापति

'गीत-गोविन्द' के राधा-माधव के क्रीड़ा-कलापों की प्रतिध्वनि मैथिल-कोकिल विद्यापति की कूक में शीघ्र ही सुनाई पड़ी। विद्यापति संस्कृत-साहित्य के प्रकांड पंडित और रसिक प्रकृति के कवि थे। इसलिए उन्होंने अपनी भावुकता को साहित्यशास्त्र के ढाँचे में ढाल कर राधा-कृष्ण के वर्णन को 'नायक-नायिका भेद' जैसा रूप प्रदान किया है। उनकी राधा कोरी मांसल वृत्ति का पोषण करने वाली है। वह यौवन के मोहक प्रसंगों को अपने चरित्र में सँजोये है। कहाँ भक्त की पुनीत भावनाएँ, कहाँ कवि की कोरी स्थूल मांसल श्रृंगारिकता! नायक और नायिका के रूप में ही कृष्ण और राधा की प्रतिष्ठा विद्यापति ने की। यद्यपि उनके काव्य में एक कवि की दृष्टि से सुन्दर उद्भावनाएँ यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं किन्तु आराध्य के प्रति वांछनीय पूज्य भाव का अभाव परिलक्षित होता है। विद्यापति ने युगल विलास के चित्रों में यौवन का मद और प्रेम की अतिशयता के प्रखर वर्णों का प्रयोग करके उन्हें सामाजिक मर्यादा से परे हटा दिया है। एक ओर कवि ने मर्यादा एवं शील की सीमा तोड़ डाली है, तो दूसरी ओर राधा को भक्ति के शुद्ध

सात्त्विक क्षत्र से विलग साहित्य तथा नायिका-भेद के घरे में सीमित कर दिया है। उनकी राधा परकीया नहीं है, स्वकीया है। विद्यापति-रचित विरहपरक कतिपय पदों में सूक्ष्म हार्दिक उद्भावनाओं के दर्शन भी अवश्य होते हैं, किन्तु आधिक्य शृंगारिकता का ही है।

चण्डीदास

चंडीदास विद्यापति के समकालीन कवि थे। उन्होंने सहजिया वैष्णव भावना से प्रभावित होकर राधा को कृष्ण की परकीया के रूप में अंकित किया है। कृष्ण का प्रेम पाना कोई सहज कार्य नहीं। भावुक राधा को पग-पग पर लज्जा, आशंका एवं त्रास आ घेरते हैं। उसमें वासना नहीं है, आत्म-समर्पण की उत्कंठा है। परकीया भावना होने के कारण उनके काव्य में राधा के चरम उत्कट प्रेम की अभिव्यंजना है। सम्पूर्ण गोपी-मण्डल कृष्ण से अपने पति के रूप में प्रेम करता है :

तुम मोर पति, तुम मोर गति, मन नाहि आन भय।

सहज-सरल काव्य पर आध्यात्मिक भावों का स्पष्ट आरोप कवि ने कहीं नहीं किया है। उनके काव्य में गोपियों के विरह का परम्परागत वर्णन है। किन्तु राधा की माता एवं पिता का नाम कीर्तिका और वृषभानु के स्थान पर पद्मा और सागर रखना इस ओर संकेत करता है कि कवि ने राधा और कृष्ण को लक्ष्मी और विष्णु की सजीव प्रतिमा मान कर काव्य की सृष्टि की है। राधा सागर और पद्मा (कमल) की पुत्री है, जिन दोनों का सम्बन्ध विष्णु के साथ सम्पूर्ण वाङ्मय में दृष्टिगत होता है।

चित्रकला में राधा

भारतीय चित्रकला भी राधा की भावना के स्पर्श से अछूती नहीं रही। श्री एरिक सी० डिकिंसन ने किशनगढ़ की चित्र-शैली में बनी-ठनी राधा का विस्तृत विवेचन किया है। उनकी खोजों के अनुसार सत्रहवीं शताब्दी के चितेरे सुरहज निहालचन्द ने राधा-कृष्ण की युगल भावना को लेकर अनेक चित्रों की सृष्टि की। एक ओर चित्रों में राज-

स्थानी बनाव-शृंगार का पुट है, तो दूसरी ओर कोमल वर्णों का सुन्दर समावेश उनकी प्रखरता को शृंगारिक माधुर्य से आच्छादित कर देता है। अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा-काव्य से बहुत पहले ही चित्रकला में भी राधा की भावना का प्रवेश हो चुका था। किशनगढ़ की राधा नवेली वधू के रूप में दृष्टिगत नहीं होती। जान पड़ता है कि चित्रकला के क्षेत्र में राधा का परकीयात्व ही स्वीकृत रहा है।[1]

१. देखिये, 'पोद्दार-अभिनन्दन-ग्रन्थ' (राधा-विषयक लेख)

—एरिक सी० डिकिंसन

२

ब्रज-काव्य में राधा का उद्भव और विकास

विगत चार सौ वर्षों के भारतीय साहित्य, सभ्यता और संस्कृति को सँजोये रखने का श्रेय वैष्णव-साहित्य को प्राप्त है। वह प्रकाश का ज्योतिर्मय मार्तण्ड दीर्घ काल से भारत के कोने-कोने में आलोक का वितरण करता रहा है। अद्‌भुत बात यह है कि वैष्णव कवियों की रचनाओं में जहाँ उच्चतम धार्मिक भावना है, वहाँ उच्च कोटि का काव्य भी है। उसकी आत्मा भक्ति है, उसकी जीवनशक्ति रस है, उसका शरीर मानवीय है। नवधा भक्ति के विभिन्न प्रकारों में से प्रकार-प्रकार की भक्ति यहाँ मिल जाती है। हिन्दी का यह ब्रजभाषीय वैष्णव साहित्य लोक और परलोक का एक साथ स्पर्श करता है। वह काव्य के पंखों पर स्वर्ग और मोक्ष तक उड़ता है। किन्तु उसके पैर जीवन के कठोर धरातल पर ही जमे रहते हैं। यही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

ब्रजभाषा काव्य में राम-भक्तिपरक रचनाएँ बहुत न्यून संख्या में उपलब्ध हैं। किन्तु ब्रज-किशोर और किशोरी की युगल गाथा का ब्रजभाषा से अटूट सम्बन्ध रहा है क्योंकि भगवान् कृष्ण की जन्मभूमि होने के कारण ब्रजभूमि कृष्ण-प्रेमियों की प्रिय स्थली रही। वहाँ की मिट्टी में घुटरिन चल-चलकर कछार की रेती को मुरली के स्वर से निनादित करते हुए घनश्याम बड़े हुए। राधा के प्रति अनेक रागात्मक घटनाओं की स्मृति का वह खंडहर है। राधा-माधव की केलि-क्रीड़ा सम्बन्धी रचनाओं से अधिकांश ब्रज साहित्य समृद्ध है। इसका दूसरा कारण सम्भवतः यह भी है कि इस सुमधुर विषय के लिए ब्रज की कोमल-कान्त पदावली ही अधिक उपयुक्त थी।

तत्कालीन परिस्थितियाँ

निर्गुण-पंथी सन्तों ने भौतिक जीवन के नैराश्य का समाधान

इन्द्रियों के दमन और कामनाओं के हनन से करने का प्रयास किया। उनके सामने जीवन के दो पथ थे। एक ओर अनेक झंझटों और नैराश्य से भरा हुआ उनका साधारण अभिशापित जीवन तथा दूसरी ओर कंचन तथा कामिनी से दूर, ज्ञान और योग का कठोर साधनामय जीवन। एक की असफलताएँ उनके जीवन में अवसाद और वेदना बनकर छा रही थीं तथा दूसरे की कठोरताओं से उनका मन सहम कर रह जाता था। ऐसे युग में वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों पर आधारित कृष्णोपासना उनकी वेदना में उल्लास बन कर समा गई—मानो युग से भटकते हुए बीहड़ पथ के पथिक को उन्होंने एक समतल तथा सुरम्य भूमि प्रदान की। राधा-कृष्ण के अनेक स्निग्ध रूपों में जनता अपने जीवन की विषमताएँ भूलने लगी।[1]

अपने लौकिक जीवन के प्रेम-विरह का आरोप जनता ने अलौकिक ब्रह्म (कृष्ण) के प्रति किया। निर्गुण साधना में नारी बाधा थी। क्योंकि उसमें एक स्पन्दन था—वह चेतन थी, जड़ नहीं। इसी से नारी-भावना को माया की संज्ञा देकर उन्होंने अपनी साधना को उससे विलग रखने का भरसक प्रयत्न किया। आश्चर्य की बात यह है कि कबीर आदि सभी निर्गुणियों ने नारी के प्रति विरक्ति रखने का उपदेश देते हुए भी स्वयं ब्रह्म की 'बहुरिया' बनकर ही विरह-निवेदन किया है। नारी के प्रति इस प्रकार की दृष्टि जीवन को स्वाभाविकता से दूर ले जा रही थी; साथ ही साधना भी दुरूह होती जा रही थी। इतना संयम एवं जीवन की सहज वृत्तियों का अवरोध सरल न था।

ऐसी विषम स्थिति में साकार ब्रह्मोपासक कवियों ने राधा-कृष्ण के प्रेम-विरह की डोर से ही अपनी भक्ति का ताना-बाना बुना।

रागात्मक तत्त्व ढूँढ़ने के लिए उन्हें मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की अपेक्षा श्रीकृष्ण का चरित्र ही अधिक उपयुक्त जान पड़ा। वल्लभाचार्य तथा हितहरिवंश के अनुसार गृहस्थ-जीवन उपासना के मार्ग में बाधक नहीं था। आवश्यकता थी स्ववृत्तियों को कृष्ण की ओर उन्मुख करने की। राधा-कृष्ण की लीलाओं में निमज्जन करने वाले कवियों ने

१. 'मध्यकालीन हिन्दी-कवयित्रियाँ' : डॉ० सावित्री सिन्हा, पृ० ६२।

मधुर स्वर-लहरी से ब्रजभाषा-साहित्य को निनादित कर दिया। राधिका की वयःसंधि से लेकर तरुणी के प्रेम-चांचल्य, प्रेम की निबिड़ता और गहराई, मिलन-विरह, मान-अभिमान आदि जिस किसी विषय का वर्णन हम वैष्णव कविता में पाते हैं, पार्थिव नायिका का अवलंबन लेकर उसी प्रकार के प्रेम का वर्णन, यहाँ तक कि प्रेम-वर्णन का कला-कौशल तक पूर्ववर्ती काव्य में उपलब्ध था। यह बात सच है कि पूर्ववर्तियों ने संयोग शृंगार को प्रधानता देकर प्रेम को अनेक स्थलों पर स्थूल बना दिया था, और वैष्णव कवियों ने विरह को प्रधानता देकर प्रेम में सूक्ष्मता और अतलता की सृष्टि की है। विरह का अवलंबन करके प्रेम का यह सूक्ष्म और गहरा स्वर ही राधा-प्रेम को आध्यात्मिक रूप प्रदान करने में सहायक हुआ।[1] वैष्णव काव्य से पूर्व राधा एक लोकनायिका थी। सामान्य नारी की भाँति ही विरहिणी राधा को लक्ष्य करके गाहा-सतसई में हाल ने कहा :

णइऊरसच्छहे जोव्वणाम्मि अइवसिएसु दिअसेसु।
अणिजत्तासु अ राईसु पुत्ति किं दड्ढमाणेण ॥[2]

अर्थात्, नारी का यौवन बहते नीर के समान होता है। दिन बीते जा रहे हैं—रात भी नहीं लौटेगी—इस दशा में इस मान से क्या होता है ?

यही भाव चंडीदास के पद में भी मिलता है :

यौवन सायरे सरितेहे, भाटा ताहारे केमने राखि।

वैष्णव काव्य में राधा के प्रति मूल स्वर ही बदल गया। वहाँ राधा मांसल उपभोग्या नारी न रहकर ह्लादिनी शक्ति का प्रतीक बन गई। परन्तु शक्ति की चिरप्रवाहिता धारा में वह ज्यों-की-त्यों नहीं उतरती। शक्ति का मान्य रूप एक जगदम्बा का है—जो सम्पूर्ण संसार का सर्जन करती है किन्तु राधा को मधुर मानिनी सखी ही माना गया। माँ के रूप में उसका कहीं भी चित्रण नहीं मिलता।

---

१. 'राधा का क्रमिक विकास' : शशिभूषणदास गुप्त, पृ० १४८।
२. गाहा-सतसई—हाल।

कालान्तर में वैष्णव धर्म की कृष्णभक्ति शाखा अनेक सम्प्रदायों में विभक्त हो गई :

१. निम्बार्क सम्प्रदाय।

२. गौड़ीय (चैतन्य) सम्प्रदाय

३. वल्लभ सम्प्रदाय

४. राधावल्लभ सम्प्रदाय

५. हरिदासी सम्प्रदाय

प्रत्येक सम्प्रदाय ने अपनी मनोवृत्ति के अनुसार राधा को रंजित किया। किसी स्थान पर राधा का रूप उच्छृंखल है, तो दूसरे स्थान पर वह सलज्ज नारी का रूप लेकर पाठकों के सम्मुख आती है। कृष्ण विष्णु के अवतार हैं। रुक्मिणी उनकी पत्नी है, फिर भी राधा का नाम सम्मान से लिया जाता है। एक ओर वह समस्त लीलाओं की संचालिका है, दूसरी ओर कृष्ण की आराध्या।

४

निम्बार्क-सम्प्रदाय में राधा

राधा-तत्त्व की दार्शनिकता की दृष्टि से ही नहीं, अपितु ऐतिहासिक दृष्टि से भी आलोचकों ने निम्बार्क-सम्प्रदाय का महत्त्व प्रदर्शित किया है, यद्यपि सम्प्रदाय का समय अभी तक शोध का विषय बना हुआ है। कालक्रम की दृष्टि से सर्वप्रथम निम्बार्क-सम्प्रदाय में अंकित राधा का स्वरूपाख्यान ही सर्वाधिक समीचीन जान पड़ता है। साहित्यिक सामग्री के अत्यल्प मात्रा में उपलब्ध होने के कारण इसका समय एवं राधा का स्वीकृत स्वरूप बहुत स्पष्ट नहीं होता।

उक्त वैष्णव मत के ऐतिहासिक प्रतिनिधि श्री निम्बार्काचार्य थे तथा सर्वप्रथम उपदेष्टा हंसावतार भगवान् माने जाते हैं जिनके शिष्य सनत्कुमार थे।[1] इसी मान्यता के साथ सम्प्रदाय का विकास आरम्भ हुआ। श्री निम्बार्काचार्य ने 'पारिजात-सौरभ', 'दशश्लोकी' आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की। इनमें से 'दशश्लोकी' को आधार-स्तम्भ मानकर निम्बार्क-सम्प्रदाय का प्रसार हुआ। इस सम्प्रदाय के अनेक भक्त कवियों ने ब्रजभाषा को अपनी कृतियों से सुशोभित किया।

निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा का जो स्वरूप आज स्वीकृत है वह आरम्भ में नहीं था। यद्यपि कुछ लोगों की ऐसी धारणा है कि राधा-कृष्ण-भक्ति की युगल उपासना का सूत्रपात निम्बार्क-सम्प्रदाय से ही हुआ है तथापि उक्त सम्प्रदाय के आधार-स्तम्भ, दशश्लोकी, में राधा को कोई विशिष्ट स्थान दिया गया है—ऐसा नहीं जान पड़ता।

'नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्' श्लोकांश से स्पष्ट जान पड़ता है कि कवि ने कृष्ण की उपासना को ही प्रमुखता प्रदान की है। किन्तु परवर्ती कवियों ने 'दशश्लोकी' के राधाविषयक—'अंगे तु वामे कृष्ण-

---

१. भागवत सम्प्रदाय—बलदेव उपाध्याय, पृ० ३१३।

भानुजां' तथा 'स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्' पद्यांशों को ग्रहण करके ही ब्रज-भाषा में राधा का सविस्तार वर्णन किया ।[1]

निम्बार्क-सम्प्रदाय में राधा को स्वकीया के रूप में ही ग्रहण किया गया है। रायण से राधा की छाया के विवाह की घटना को इन्होंने निराधार बताया तथा यह भी कहा कि यह सब तो मूर्खों के अज्ञान का नाश करने के लिए भगवान् की लीला-मात्र थी। राधा-कृष्ण को नित्य दम्पती मानकर उनकी दिव्य अलौकिक लीला का वर्णन करने में भी कवियों ने अपनी असमर्थता प्रकट की है :

नित्यमेव हि दाम्पत्यं श्रीराधाकृष्णयोर्यतः ।
पाणि-ग्रहणसम्बन्धौ वर्ण्यते न च वर्ण्यते ॥

कान्ता भाव में राधा का चित्रण दाम्पत्य भाव से ही किया गया है। श्रृंगार रस को सबका मूल मानने वाले कवियों ने राधा को ही उसका उत्स माना है।

श्री भट्ट

काल एवं कवित्व की दृष्टि से श्री भट्ट ही सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण माने जाते हैं। इनकी कविताओं का संग्रह 'युगलशतक' (सं० १६५२) ब्रजभाषा की प्रथम कृति होने के कारण आदिवाणी कहलाया। इसकी मूल पद-संख्या भी अभी विवाद का विषय बनी हुई है। कहा जाता है कि कई सहस्र पदों की रचना करके श्री भट्ट देवाचार्य ने अपने गुरु श्री केशव कश्मीरी के चरणों में अर्पित किये। उन्होंने कलियुगी जीवों को श्री राधा-कृष्ण विषयक इन गहन श्रृंगारा-त्मक पदों के पठनाधिकारी न समझते हुए इन्हें यमुना के अर्पित कर दिया। घटना और उसके कारण कुछ भी रहे हों किन्तु यह निर्विवाद है कि आधुनिक शोधों के उपरान्त १०० से अधिक पद प्राप्त हैं। 'युगल-शतक' ६ सुखों में विभक्त है :

(१) सिद्धान्त सुख, (२) ब्रजलीला सुख, (३) सेवा सुख,

१. 'राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य'
—डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० २२६।

(४) सहज सुख, (५) सुरत सुख, (६) उत्साह सुख ।

सिद्धान्त सुख में शान्त रस का वर्णन है, किन्तु शेष पाँचों सुखों में राधा-कृष्ण के विभिन्न मधुर रूपों का ही कवि ने अंकन किया है। श्री भट्ट के सम्मुख प्रतिक्षण राधा और श्याम की युगल प्रतिमा झूमती रहती थी :

युगल किशोर हमारे ठाकुर !
सेव्य हमारे श्री प्रिय प्यारे वृन्दाविपिन विलासी ।
नन्दनँदन वृषभानु-नन्दिनी चरन अनन्य उपासी ।।

राधा-कृष्ण के अतिरिक्त उनके जीवन में और किसी के लिए न कोई रस था, न स्थान ही । लगता है कि उनके सर्वस्व का युगल-केलि में ही समाहार हो गया था और सोते-जागते उसी में वे रस लेते थे :

हितु बावरि निज कुञ्ज में, राधा माधव केलि ।
श्री भट निपट हित कारिणी, हरषि हरषि रस रेलि ।।[1]

उनके दिव्योद्गारों से रासलीला के मधुर गीत निस्सृत हुए :

नव निकुञ्ज में पुंज सखिन के तिन में श्यामा श्याम विराजै ।
शीतल मन्द सुगन्ध त्रिविध मारुत ऋतु राजै ।।[2]

सखियों के मध्य राधा-कृष्ण नित्य-लीला में रत रहते हैं। किन्तु इनके वर्णनों में एक विशेषता है। वह यह कि अतिशय शृंगार-वर्णन भी वासना की भूमि से ऊपर उठा रहता है :

भीजत कब देखी इन नैना !
स्याम/जू की सुरँग चूनरी, मोहन को उपरैना ।

बाल्यावस्था से ही राधा श्री भट्ट के काव्य-मंच पर विद्यमान रहीं। भोले बचपन में भी कृष्ण से दूर रहने की कल्पना उसे अधीर कर देती थी :

---

१. 'युगलशतक'—श्री भट्ट (सुरत सुख), पृ० ३२ ।
२. वही, पृ० ३० ।

कसे हरि देखे बिना राखेगी तन मोर।
गोचारन गोपाल गये, लै मेरो चितचोर ॥[1]

श्री भट्ट के काव्य के युगल-सान्निध्य में अनेक सुन्दर चित्र उपलब्ध हैं :

जोरी गौरी स्याम की, थोरी रचन बनाय।
प्रतिबिम्बित तन परस्पर, श्री भट उलट लखाय ॥

श्री भट्ट की राधा कुलटा नागरी नहीं है—वह भोली शीलवती युवती है। उसने अपनी प्रबल प्रीति के बल पर ही श्याम को मोल लिया हुआ है :

हास विलास रास राधे सँग शील आपनो तोले।
श्री भट जदपि मदन मोहन तउ हरि हारि शिर डोले।

राधा कान्तिमयी है—उसका मोहक मंजुल रूप देखते ही बनता है :

नेक नैन को कोर मोरि मोहन वश कीने।
राधे तेरे रूप की, पटतर को दीने।
कमल कोश अलि ज्यों, चले, तारे रंग भीने।
श्री भट अंजन हुवै लालन लव लीने ॥[2]

◇ ◇ ◇

जित जित भामिनि पग धरे, तित तित भावत लाल।
करत पलकनि पाँवड़े, रूप विरोहित बाल ॥[3]

श्री हरिव्यास

हरिव्यास मुनि श्री भट्ट के निकटतम एवं अंतरंग शिष्य थे। इनके विषय में किंवदंती है कि इन्होंने बलि के निमित्त एकत्र बकरों पर

---

१ 'युगलशतक' : श्री भट्ट (ब्रजलीला सुख), पृ० ७।
२. वही (सहज सुख), पृ० २८।
३. वही (सहज सुख), पृ० २७।

असीम करुणा का अनुभव किया । फलतः देश के राजा एवं स्वयं देवी ने प्रभावित होकर इनसे वैष्णव धर्म की दीक्षा ली ।

गुरु की आज्ञा से इन्होंने 'महाबानी' की रचना की जो हिन्दी में इनकी एकमात्र रचना है । निम्बार्क सम्प्रदाय में रसिकता की प्रतिष्ठा करने के कारण हरिव्यास जी का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया । इनके व्यक्तित्व के प्राबल्य के कारण 'रसिक-शिष्य' हरिव्यासी नाम से भी विख्यात हैं । निम्बार्क-मतावलम्बियों में इनका वही स्थान है जो सूर को वल्लभानुयायियों में प्राप्त है ।

इनकी पुस्तिका 'महाबानी' 'युगलशतक' की व्याख्या मात्र है । राधा का 'महाबानी' में अंकित स्वरूप मूल रूप में वही पुरातन है । यद्यपि आज 'महाबानी' का जो स्वरूप उपलब्ध है, उसमें कितने पद 'युगलशतक' की शैली पर प्रक्षिप्त हैं, कहना कठिन है ।

इनकी पुस्तक का विभाजन भी 'सुखों' में है । किन्तु इसमें ब्रजलीला सुख का उल्लेख नहीं है । सेवा-सुख में राधा-कृष्ण की अष्ट-याम सेवा का वर्णन है—सुरत-सुख में श्याम और श्यामा परस्पर सुरतसागर में निमज्जन करते हैं । यही है प्रेम का चरमोत्कर्ष । सहज-सुख में दोनों का परस्पर प्रगाढ़ प्रेम एवं मिलन के समय की वियोग की आशंका आदि सहज भावों का कवि ने चित्रण किया है । सिद्धान्त-सुख में मत का दार्शनिक विवेचन है ।

'युगलशतक' सूत्र है, तो 'महाबानी' उसकी सरल व्याख्या । राधा का स्वरूप भी इन्होंने ज्यों-का-त्यों ही ग्रहण किया है । अन्तर है तो यही कि विस्तृत पटल होने के कारण राधा का सुचारु चरित्र-विकास करने के लिए इनके पास पर्याप्त क्षेत्र था— किन्तु भावों की सूक्ष्मता को इन्होंने कहीं भी भुलाया नहीं है । पदावली की कोमलता ने राधा की कमनीयता को द्विगुणित कर दिया है । 'महाबानी' में शुद्ध नित्य-विहार का वर्णन है, ब्रज एवं ब्रज से सम्बन्धित राधा-कृष्ण का वर्णन नहीं है । ब्रज-स्थित वृन्दावनधाम पृथ्वी पर अवस्थित रहते हुए भी इसके उत्पत्ति-प्रलयादि कारणों से अभिन्न है ।

शक्तिमान् कृष्ण, शक्ति राधा के साथ नित्य विहार करते हैं :

"विलसौ दोउ लाल मेरे हिय-सदन सुख सने
सुरत रसलीन अंग अंग नागर नवल।"

◇ ◇ ◇

आज अति राजत जुगल किशोर—
देख री देखि रहे कवि अद्भुत छवि की ओर न छोर।
अंसन पर भुज दिये परस्पर मनहर साँवर गौर।
श्री हरि प्रिया वदन-शश सुन्दर चितवन नैन चकोर॥[1]

राधा-कृष्ण की अद्वैतता का मधुर वर्णन करते हुए श्री हरिव्यास कहते हैं।

सदा सर्वदा जुगल इक, एक जुगल तन धाम।
आनां अरु अहलाद मिलि, विलसत द्वै द्वै नाम॥
एक स्वरूप सदैव द्वै नाम।

सुरत-वर्णन में कवि की विशेष पटुता द्रष्टव्य है।

रंग दोउ सुरत रंग के रंग।
रंगरँगीले आज विराजत प्यारी प्रीतम संग।
सोहत भूषन वसन रंगमय सिथिल भये सब अँग।
हितू सखी श्री कृष्ण प्रिया विलोकति उर में अधिक उमंग॥[2]

माधुर्य की दृष्टि से इनके पद अष्टछाप के कवियों के समकक्ष नहीं रखे जा सकते। राधा और कृष्ण का सम्बन्ध शक्ति और शक्तिमान जैसा है। वे भिन्न स्वरूप धारण करते हुए भी एक ही हैं। उनमें द्वैतता खोजना मूर्खता का परिचायक मात्र है। उनका विलग रूप लीला के हेतु ही है—इसी से दोनों में स्थूल रूप से अन्तर होते हुए भी सूक्ष्म दृष्टि से कोई अन्तर नहीं किया जा सकता। उनकी राधा कृष्ण की स्वकीया है।

परशुरामाचार्य

परशुरामाचार्य ने ब्रज-भाषा में तेरह ग्रन्थों की रचना की किन्तु

१. महाबानी, पृ० १६६।
२. वही, पृ० २६।

इनकी कृतियों में उपदेश का तत्त्व प्रमुख है। इसी से इनके काव्य में राधा-विषयक श्रृंगारिक उद्‌भावनाओं के लिए कोई विशेष स्थान नहीं रहा।

निम्बार्कीय कृतियों में अधिकांशतः राधा-कृष्ण का मधुर रूप ही सम्मुख आता है। किन्तु यह समझ बैठना नितान्त भ्रामक है कि उनमें मदमाते यौवन की श्रृंगारपरक व्याख्या का ही उल्लेख है। वास्तव में वात्सल्य, सख्य, दास्य तथा माधुर्य, सभी प्रकार की भक्ति-पद्धति इनके काव्य में मिलती है। श्री परशुरामाचार्य द्वारा साधकों से किसी विशेष रस का अनुसरण करने का आग्रह नहीं किया गया है। मधुर भाव अधिक मुखर होने का यह तात्पर्य नहीं कि अन्य रस उपेक्षित रह गये हैं। यों तो सभी भावों का कवियों ने अंकन किया है किन्तु मूल बात तो हृदय के झुकाव की है—जिस रस में कवि का मन अधिक रमा, उसी में प्रतिभा उलझ कर रह गई है। श्री भट्ट एवं हरिव्यास जी ने राधा के मधुर पक्ष को मुख्यता प्रदान की। किन्तु फिर भी उन्होंने वात्सल्यादि भावों का सुन्दर वर्णन किया है। अनेक पदों में दास्य भाव का भी चित्रण है :

जुगल किसोर हमारे ठाकुर।

श्री महाबानी ग्रन्थों में आदि में सख्य-भाव का विशद वर्णन होने के कारण यह भ्रम उत्पन्न हो जाता है कि इस सम्प्रदाय में माधुर्य-भाव की ही रचनाएँ हैं—इसका कारण यह है कि ब्रज-भाषा की रचनाओं में श्रृंगार रस की प्रधानता है एवं संस्कृत-रचनाओं में शेष तत्त्वों का भी पर्याप्त समावेश मिलता है।

नागरीदास

श्री नागरीदास की राधा-कृष्ण के प्रति विशेष अनुरक्ति थी। उनके ग्रन्थों में राधा कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति मानी गई है। वे 'आनंदभूरि' तथा शब्दों में आनन्द का प्रसार करने वाली देवी हैं। उनकी आराधना से मनवांछित फल सहजोपलब्ध है। राधा-कृष्ण की आराधना में उन्होंने

युगलकेलि के अनेक सुन्दर चित्र अंकित किये हैं। राधा-कृष्ण की क्रीड़ा-स्थली होने के कारण उन्होंने ब्रजभूमि के विशेष महत्त्व की स्वीकृति प्रदान की है।[1] भक्ति के क्षेत्र में प्रेमतत्त्व की महत्ता का प्रदर्शन करते हुए कवि ने इष्ट युगल को प्रस्तुत तत्त्व के अवतार-रूप में अंकित किया है।[2]

श्री पीताम्बर देव

राधा-कृष्ण की युगलोपासना पर बल देते हुए श्री पीताम्बर देव ने इष्ट युगल को परस्परावलंबित माना है। प्रेम के ये दोनों रूप भक्तों को 'रस' प्रदान करने के निमित्त अवतरित होते हैं।[3] राधा के बिना कृष्ण और कृष्ण के बिना राधा का व्यक्तित्व अधूरा है। विहारिणी राधा को, भोग्या होने के कारण, कवि ने, विहारी कृष्ण से अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। रसिक भक्तों पर कृपा करने के निमित्त ही वह शरीर धारण करती है।[4]

श्री किशोरीदास

श्री किशोरीदास ने राधा-कृष्ण में अभेद स्थापित करते हुए राधा को कृष्ण की तेजस्वरूपा देवी के रूप में स्मरण किया है। चिरकिशोरी राधा उनकी स्वकीया है। अलौकिक दम्पती नित्यविहारी हैं। उनकी सेवा ही एकमात्र भक्ति-प्राप्ति का साधन है :

स्वारथ रहित दीन हितकारी कोहि नहि दीसत द्वार आन अब।
पावों सति सभी अव पद युग कर कमल करें निर्भय जब ॥[5]

निम्बार्क-सम्प्रदाय में राधा की विपुल महत्ता रही है। निम्बार्काचार्य ने राधा को 'अनुरूप-सौभगा' माना है। राधा और कृष्ण में अभेद की स्थापना करते हुए निम्बार्क-मतवादियों ने उन्हें प्रेम-तत्त्व के दो

---

१. नागरीदास ग्रंथावली (भाग २), पृ० १६, पद-सं० १।
२. वही (भाग १), पृ० ६५, पद-सं० ६०।
३. सिद्धान्तसाररत्नाकर, पृ० ८४।
४. श्री निम्बार्कमाधुरी, पृ०-३०४।
५. वही, पृ० ६६६, पद-सं० २।

रूप माना है। लीलार्थ विलग स्वरूप धारण करने पर भी मूलतः दो में कोई भेद नहीं है। इस युगल की महत्ता परस्परावलंबित है। प्रस्तुत मतवादियों ने भोग्या होने के कारण राधा को कृष्ण की अपेक्षा अधिक माना है। राधा और रुक्मिणी का स्वरूपांकन करते हुए कवियों ने राधा को श्रीस्वरूपा तथा रुक्मिणी को लक्ष्मीस्वरूपा माना है। निम्बार्कीय कवियों ने राधा का चित्रण स्वकीया के रूप में ही किया है, परकीया के रूप में नहीं। जहाँ कहीं 'कुमारी' शब्द का प्रयोग हुआ है, वहाँ भी कवि का अभिप्रेत किशोरावस्था की सूचना देना मात्र रहा है, उसका तात्पर्य अविवाहिता कहने से नहीं था। जहाँ कहीं परकीया-भावना का आभास भी होता है वहाँ भी कवि उसे भक्तों का भ्रम कह कर टाल देते हैं।

५

चैतन्य गौड़ीय सम्प्रदाय में राधा

अबला नारी का प्राण लेने के लिए केवल वृन्दावन में ही कृष्ण की वंशी बजी थी, ऐसी बात नहीं; बल्कि बंगाल के पनघटों और मैदानों में भी वंशी बजी थी, और आज भी बजती है। विश्वव्यापी प्रेम की यह भी एक प्रकार की नित्यलीला है।[1]

चैतन्य महाप्रभु मूल रूप से बंगाल के ही निवासी थे, किन्तु उनके अनुयायी गोस्वामियों ने वृन्दावन को ही अपनी भक्ति का लोक बनाया। चैतन्य मत माध्वमत की ही गौड़ीय शाखा है किन्तु दोनों के दार्शनिक सिद्धान्तों में पर्याप्त अन्तर हो गया है। इस गौड़ीय शाखा पर चैतन्य के व्यक्तित्व का इतना प्रभाव है कि उनके साहित्य और विचारों को छोड़ कर शेष कुछ रहता ही नहीं। उनके सिद्धान्तों के प्रसारण का मेरुदंड षड्गोस्वामियों को माना जाता है :

(१) श्री रूप गोस्वामी, (२) श्री सनातन गोस्वामी, (३) श्री रघुनाथ गोस्वामी, (४) श्री रघुनाथ भट्ट, (५) श्री गोपाल भट्ट, और (६) श्री जीव गोस्वामी।

इनके आविर्भाव से पूर्व ही हिन्दी-साहित्य में श्रीकृष्ण का लीलामय स्वरूप बहुत-कुछ मुखर हो चुका था। गौड़ीय वैष्णवों ने इस लीलावाद को विशेष रूप से अपनाया। राधा-कृष्ण के विहार को सत्य एवं नित्य मानकर ही ये भक्त आगे बढ़े। राधा के प्रति इतनी तन्मयता संभवतः अन्य किसी भी सम्प्रदाय के साहित्य में दृष्टिगत नहीं होती। इन्होंने मुख्य रूप से राधा के चार स्वरूपों का वर्णन किया है :

(१) श्री राधा आह्लादिनी है। आह्लाद की साक्षात् अधिष्ठात्री

१. 'श्री राधा का क्रमिक विकास' : डॉ० शशिभूषणदास गुप्त, पृ० ३११।

है। आह्लाद का सारभूत तत्त्व प्रेम और प्रेम का सार है, 'मादनाख्यान-महाभाव'।[1] राधा इस भाव से नीराजिता है। कृष्ण की प्रेमिकाओं में राधा को उच्चतम स्थान प्राप्त है।

(२) राधा पूर्ण शक्ति है तथा कृष्ण पूर्ण शक्तिमान्। राधा सम्पूर्ण लावण्य, कांति एवं सौन्दर्य की मूलाधार है। परमशक्ति राधा तथा परम शक्तिमान् कृष्ण का भेद तथा अभेद—दोनों ही उक्त मत में स्वीकृत हैं। वास्तव में अभेद होते हुए भी लीला करने के हेतु श्रीकृष्ण और राधा ने भिन्न-भिन्न स्वरूप ग्रहण किए।

(३) श्रीकृष्ण अखंड रसपूर्ण हैं तथा राधा हैं अखंड रस-वल्लभा।

(४) श्री राधा-प्रेम सर्वातिशायी है। कृष्ण स्वयं सर्वतोमुखी शक्ति से सम्पन्न हैं किन्तु वह भी राधिका-प्रेम में विभोर रहते हैं।

चैतन्य ने राधा के इन सभी रूपों को अपनी कविता में अपनाया। उन्होंने अन्य सखियों की कल्पना केवल इसी कारण की कि 'कान्ता-रस-वैचित्र्य' का उल्लास अनेक कान्ताओं के बिना नहीं होता। इसी से ह्लादिनी-शक्ति राधा अनेक गोपिकाओं के रूपों में प्रकट होती है। श्री चैतन्य ने इस प्रकार राधा और सखियों के मध्य भी अभेद की स्थापना की। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि राधा, कृष्ण तथा गोपिकाओं के मध्य एक सोपान है। एक ओर जहाँ वह कृष्ण से अभिन्न है, दूसरी ओर गोपियों से भी।

भगवान की स्वाभाविक अचिंत्य शक्तियों में तीन प्रधान हैं—(१) स्वरूप-शक्ति, (२) जीवन-शक्ति (३), माया-शक्ति। इनमें पहली अप्राकृत है और अन्य दोनों प्राकृत। इस अप्राकृत स्वरूप-शक्ति की सारभूता शक्ति ह्लादिनी है; उसी ह्लादिनी शक्ति का सारभूत विग्रह राधा का तनु माना गया है।[2]

राधा (तनु) की कृष्ण (तनु) के साथ लीला को सत्य एवं नित्य

---

१. श्रीमद्वैष्णवसिद्धान्तसारसंग्रह : श्यामलाल हकीम (संकलनकर्ता), पृ० ६०।
२. 'श्री राधा का क्रमिक विकास' : श्री शशिभूषणदास गुप्त, पृ० २११।

मानने वाले इन कवियों ने अनेक पौराणिक गाथाओं में सत्य के दर्शन किये। बंकिम के अनुसार कृष्ण की विवाहिता २१ पत्नियाँ थीं।[1] इस दृष्टि से सम्पूर्ण गोपी-मंडल परकीया की परिधि में सिमट जाता है। राधा भी उन्हीं में से एक गोपी थी। इस पौराणिक किंवदन्ती तथा दार्शनिक परिकल्पना के मध्य एकसूत्रता स्थापित करने के लिए गोस्वामियों ने सभी परिकीयाओं को वल्लभाओं की संज्ञा प्रदान की क्योंकि उन्होंने अपना सर्वस्व कृष्ण के प्रति समर्पित कर डाला था। उनकी उपासना-पद्धति स्वकीयाओं-जैसी ही थी—भले ही तन्मयता परकीयाओं-जैसी रही हो।

उनके गुण, रूप, शील के अनुसार गोस्वामियों ने श्रेणी-भेद की स्थापना की। अविवाहिता प्रेमिकाएँ कन्या और विवाहिता प्रेमिकाएँ परोढा कहलायीं। इनके अनेक उपभेद स्थापित करके गोपियों को भिन्न-भिन्न कोटियों में रखा गया। किन्तु राधा के प्रति सबने एक-स्वर से कहा कि वह सर्वांश-श्रेष्ठ है।

प्रेम एवं सौन्दर्य की अद्वितीय प्रतिमा, राधा, का वर्णन करते हुए श्री रूप गोस्वामी ने कहा है कि 'वृषभानु-नंदिनी सुष्ठुकान्तस्वरूपा, कृतषोडशश्रृंगारा तथा द्वादशाभरणाश्रिता' है। राधा से इतर सखियों का स्वतन्त्र अस्तित्व गौड़ीय वैष्णवों को स्वीकार नहीं। राधा के कारण ही उनका अस्तित्व है।

गोस्वामियों ने इस तथ्य पर विशेष बल दिया कि कृष्ण-राधा की लीला 'लौकिक काम' नहीं है। किन्तु 'कामक्रीड़ा-साम्य' होने के कारण ही साहित्य में इसे रति-प्रसंग के अंतर्गत रखा गया। काम के मेरुदंड, वासना, की इस प्रेम में पूर्णरूपेण शून्यता दृष्टिगत होती है।

चैतन्य-सम्प्रदाय की विलक्षणता यह है कि इसने राधा-कृष्ण-प्रेम को परकीया-प्रेम का रूप प्रदान किया है। अन्य किसी भी सम्प्रदाय में राधा को कृष्ण की परकीया नहीं माना गया। संभवतः अन्यत्र कवि ने नैतिक दृष्टि से इसे ठीक न समझा हो, किन्तु यहाँ आकर सिद्धान्त पूर्णरूप से उलट गये। अन्य मतों में जहाँ राधा को स्वकीया मानकर उसके प्रेम

---

१. कृष्णचरित्र, तृतीय खंड।

में परकीया की-सी उत्कंठा का चित्रण किया गया है, वहाँ चैतन्य-मत में राधा को परकीया मानकर स्वकीया की-सी पूर्ण समर्पणकर्त्री माना गया है। इनके अनुसार परकीया भाव उच्चतम है क्योंकि उसमें प्रेमी महान् त्यागी बन बैठता है—उसके सम्मुख केवल त्याग का ही लक्ष्य रहता है—कायिक मिलन की न कभी कोई वांछा होती है, न आशा ही।

चैतन्य स्वयं कृष्ण-प्रेमी थे। उनका प्रेम राधा की भावना के समानान्तर ही चलता रहा—या यों कहें कि राधा से आत्मसात् करके ही उन्होंने कृष्ण से नाता जोड़ा है तो अन्यथा न होगा। अत: कितने ही स्थलों पर यह ढूंढ़ निकालना कठिन हो जाता है कि पद राधा के विषय में कहा गया है अथवा चैतन्य की व्यक्तिगत अनुभूति है। संन्यास लेने के पश्चात् उन्होंने अपने गौर शरीर पर जब लाल वस्त्र धारण किये तब तो वे अनायास ही अपने आपको भूल साक्षात् राधा बन बैठे :

राधिकार भावमूर्ति प्रभुर अन्तर।
सोइ भावे सुख दुख उठे निरंतर॥
शेषलीलाय प्रभूर विरह उन्माद।
भ्रममय चेष्टा सदा प्रलापमय वाद॥
राधिकार भाव यैछे उद्धव दर्शने।
सोइ भावे मत प्रभु रहे रात्रि दिने॥
रात्रे विलाप करे स्वरूपेर कंठ धरि।
आवेशे आपन भाव कहेन उघारि॥[1]

चैतन्य की चेष्टाएँ राधा के अनुरूप ढल गई थीं। राधा और गौरांग एकाकार हो गये। एक ओर राधा :

उपवन हेरि मूरछि पदु भूतले चिन्तित सखीगण संग।
पद अंगुलि देह खिति पर लेसइ पाणि कपल अवलम्ब॥

उसी आवेश में चैतन्य भी आत्म-विस्मृत हैं :

---

१. चैतन्य-चरितामृत।

भावावेशे कभु प्रभु भूमिते बसिया।
तर्ज्जनी ते भूमि लेखे अधोमुख हैया॥

दोनों की दशा का साम्य अद्भुत है। इसी कारण चैतन्य के अनुयायियों ने उन्हें गौरावतार माना। गौरावतार उक्त सम्प्रदाय का मुख्य तत्त्व है। गोस्वामियों के अनुसार श्रीकृष्ण का अवतार लेने के पश्चात् भी भगवान् के तीन लोक शेष रह गये [1] और उन्हीं की पूर्ति के लिए उन्होंने गौरावतार धारण किया। कृष्णावतार में भगवान् ने प्रेम का आलम्बन-सुख तो प्राप्त किया किन्तु आश्रय की उत्कंठा, आलम्बन के मिलन-सुख की प्राप्ति की वांछा अभी अतृप्त ही थी। अतः भगवान् ने गौरावतार धारण किया। इस प्रकार एक साथ ही उन्होंने आश्रय और आलम्बन के हृदय-सागर में हिलोर लेने वाली वीचियों का अनुभव किया।

चन्द्रावली को कवियों ने राधा की मुख्य प्रतिद्वन्द्विनी के रूप में चित्रित किया है :

राधाचन्द्रावलीमुख्याः प्रोक्ता नित्यप्रिया ब्रजे।
कृष्णवन्नित्यसौन्दर्य — वैदग्ध्यादिगुणाश्रयाः॥[2]

इस श्लोक में यद्यपि राधा तथा चन्द्रावली का एक साथ ही उल्लेख किया गया है, किन्तु फिर भी राधा की श्रेष्ठता के विषय में सम्पूर्ण कवि-समाज निर्विवाद रूप से सहमत है।

भगवान् की अंतरंग शक्ति एकात्मिका होने पर भी त्रिविधा है :

(१) संधिनी शक्ति—सतोगुणी है। इसी के बल पर भगवान् स्वयं सत्ता धारण करते हैं।[3]

(२) संवित् शक्ति—चिद्गुण-प्रधाना है तथा इसी के बल पर भगवान् इससे ज्ञान प्रदान करते हैं।[4]

---

१. 'श्री राधा का क्रमिक विकास' : शशिभूषणदास गुप्त, पृ० २१०।

२. 'उज्जवल नीलमणि' : कृष्णवल्लभा, पृ० ३६।

३. सदात्मापि यदा सत्तां धत्ते ददाति च सा सर्वदेशकालद्रव्यव्याप्तिहेतुः संधिनीशक्ति : सिद्धान्तरत्न : बलदेव विद्याभूषण, पृ० ३९।

४. संविदात्मापि यदा संवेत्ति संवेदयति च सा संवित्—सिद्धान्तरत्न, पृ० ४०।

(३) ह्लादिनी शक्ति—आनन्द-गुण-प्रधान है तथा सर्वश्रेष्ठ है।[1]

गौड़ीय वैष्णवों ने सर्वप्रथम भक्ति का विवेचन रस के रूप में किया। श्री रूपगोस्वामी ने 'भक्ति-रसामृत-सिंधु' में इसका सांगोपांग विवेचन करते हुए सिद्ध किया है कि श्रेष्ठतम भक्ति माधुर्यपरक है। मधुर भाव में तीन प्रकार की रति सन्निहित है—साधारणी रति[2], समंजसा रति[3] तथा समर्था रति[4]। इनमें से समर्था रति सर्वश्रेष्ठ है।

समर्था रति में स्वार्थ का लेश भी नहीं होता। इसी भाव का जब चरम विकास हो जाता है तब इसे राधा-भाव की संज्ञा दी जाती है। भक्ति, दर्शन तथा काव्य की तिरंगी छटा लेकर राधा नामक अनमोल रत्न इस संप्रदाय में और भी अधिक चमक उठा। बंगाल के अनेक वैष्णवों ने राधा-कृष्ण की विभिन्न चेष्टाओं एवं भावों का चित्रण अपनी कृतियों में किया है।

कृष्णदास

श्री कृष्णदास के काव्य में राधा-कृष्ण के प्रति अनेक सुन्दर भावों का अंकन मिलता है, जिसमें से सर्वतोप्रमुख किलकिंचित् भाव है।

यदि राधा को देख कर कृष्ण के मन में उसके स्पर्श की इच्छा प्रबल हो उठती है तथा उनके स्पर्श से राधा के हृदय में जो हर्ष-आदि संचारियों पर आधृत भाव उद्भूत होता है तो उसे किलकिंचित् भाव कहते हैं :

वामा स्वभावे मान उठे निरन्तर
तार काये बाड़े कृष्णेर आनंद सागर

◇ ◇ ◇

अधिरूढ़ महाभाव राधिकार प्रेम।
विशुद्ध निर्मल जैछे दशवाण हेम॥

---

१. ह्लादात्मापि यदा ह्लादते ह्लादयति च ह्लादिनी शक्तिः। सिद्धान्तरत्न, पृ० ४०।

२. कुब्जा की रति, जिसमें मथुराधाम की प्राप्ति होती है।

३. पट्टरानियों की रति, जिसमें कर्तव्य-बुद्धि से ही प्रेम का विधान होता है।

४. राधा की रति, जिसमें स्वार्थ की भावना नहीं होती—मर्यादा का भी उल्लंघन करने में हिचकिचाहट नहीं होती।

कृष्णेर दर्शन आदि पाय अचंबिते ।
नानाभाव विभूषणे हय विभूषिते ।।

(चैतन्य-चरितामृत, मध्यलीला, पृ० २०५)

किलकिंचितादि भावेर शुन विवरण ।
जै भाव भूषाय राधा हरे कृष्णमन ।।

(चैतन्य-चरितामृत,मध्यलीला, पृ० २०६)

विलास का वर्णन कवि इस प्रकार करता है :

राधा बसि आछे किंवा वृन्दावन जाय ।
तांह आचंबिते कृष्ण दर्शन पाय ।।
देखितेइ नाना भाव है वैलक्षण ।
से वैलक्षणेर नाम विलास भूषण ।

(चैतन्य-चरितामृत, मध्यलीला, ६०-१०६-२०७)

राधा प्रेम-स्वरूपा है :

प्रमेर स्वरूप देह प्रेमे विभावित ।।
कृष्णेर प्रेयसी श्रेष्ठ जगते विदित ।।

(चैतन्य-चरितामृत, पृ० १४६)

"कान्ता-शिरोमणि राधा अत्यन्त सुन्दरी है । कृष्ण स्नेह-रूपी उबटन लगाकर उन्होंने देह को सुगंधित और उज्ज्वल वर्ण वाला किया है । इसमें करुणा, तरुणाई और लावण्य इतना है मानो उन्होंने कारुण्यामृत और लावण्यामृत की धाराओं में स्नान किया हो । कृष्ण-अनुराग रूपी अरुण वस्त्र उन्होंने धारण कर रखा है…यह राधा कृष्ण के मधुर रस का पान कराती है ।"[1]

हिन्दी-साहित्य में गौड़ीय सम्प्रदाय की रचनाएँ नगण्य संख्या में प्राप्त हैं। इन हिन्दी गौड़ीय वैष्णवों में सूरदास मदनमोहन का नाम विशेष उल्लखनीय है । इनकी कविताएँ इतनी सरल होती थीं कि 'सूर-सागर' के पदों में इनके अनेक पद मिल गये हैं। इनकी कोई पुस्तक

१. 'सोलहवीं शती के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि' : रत्नकुमारी, पृ० २६८-६६ ।

प्रसिद्ध नहीं है अपितु कुछेक फुटकर पद मिलते हैं, जिनमें राधा-कृष्ण की युगल उपासना की गई है :

नवल किसोरी नवल नागरिया ।
अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम भुजा अपने उर धरिया ।।
करत विनोद तरनि-तनया-तट, स्यामा स्याम उमगि रस भरिया ।
यों लपटाइ रहे उर अन्तर मरकत मनि कंचन ज्यों जरिया ।।
उपमा को घन दामिनि नाहीं, कंदरप कोटि वारने करिया ।
सूर मदन मोहन बलि जोरी नंदनँदन वृषभानु दुलरिया ।।

राधा प्रियतम कृष्ण के साथ नित्य-रति में निमग्न है । कवि की समझ में नहीं आता कि इन अद्भुत प्रेमालाप की उपमा वह संसार में किसके साथ दे ।

भगवतमुदित

श्री भगवतमुदित की रचनाओं में राधा को कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति के रूप में अंकित किया गया है । आह्लादिनी शक्ति का मूलभाव प्रेम है, तथा प्रेम का सार उदार-भाव है ।[1]

किशोरीदास

श्री किशोरीदास ने राधा-कृष्ण की क्रीड़ा-स्थली होने के कारण वृन्दावन की अपूर्व महत्ता को स्वीकृति प्रदान की है । कवि के मन में तद्लीला-निस्सृत आनन्द का भोग करने में एकमात्र गोपियाँ ही समर्थ हैं । अतः वे देवताओं की ईर्ष्या का विषय बनी हुई हैं ।

वल्लभरसिक

श्री वल्लभरसिक ने राधा को कृष्ण की स्वकीया माना है । उनका मुख्य विषय राधा-कृष्ण की लीलाओं का अंकन था । इष्टयुगल से सम्बद्ध होने के कारण वृन्दावन को उन्होंने अद्वितीय अवनि माना है । उनके अनुसार वृन्दावन के मादक वातावरण में रमकर भक्त की सम्पूर्ण कामनाएँ निःशेष हो जाती हैं ।

---

१. वृन्दावन शतक की टीका, मंगलाचरण ।

६

वल्लभ-सम्प्रदाय और अष्टछाप में राधा

जिस प्रकार दर्शन के क्षेत्र में वल्लभाचार्य का सिद्धान्त शुद्धाद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है उसी प्रकार भक्ति के क्षेत्र में पुष्टिमार्ग की प्रसिद्धि है। उन्होंने स्वयं मुक्ति के दो मार्ग बताए—एक ज्ञानाप्लावित और दूसरा भक्ति पर आधारित। भक्ति को सहज तथा श्रेष्ठ बताते हुए उन्होंने जनसाधारण के ग्रहण करने के लिए कृष्ण के गोलोक की कल्पना की जिसमें वे गोपियों के साथ विहार करते हैं—किन्तु भक्तों को लीला का आनन्द प्रदान करने के लिए वे पृथ्वी पर साकार रूप में अवतरित होते हैं।

श्री वल्लभाचार्य ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें 'वेदान्त-सूत्र' तथा 'तत्त्वदीप-निबन्ध' मुख्य है। यद्यपि इन्होंने ब्रजभाषा में कोई ग्रन्थ नहीं लिखा, फिर भी ब्रजभाषा में राधा के विस्तृत वर्णन का श्रेय इन्हें प्रदान किया जाता है, क्योंकि इनकी शिष्यमण्डली ने ब्रजभाषा को ही राधा-कृष्ण की माधुरी का प्रसार करने के लिए चुना। यद्यपि वल्लभाचार्य के मत में श्रीकृष्ण की बालोपासना का विधान है, किन्तु इस युग में माधुर्य-भक्ति का सर्वत्र प्रचार हो गया था, इसलिए वल्लभ, सम्प्रदाय में भी श्रीकृष्ण की शृंगारपरक भक्ति का समावेश हो गया। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने तो माधुर्य भाव को ही प्रधानता प्रदान की, जिसके फलस्वरूप राधा का भक्ति-क्षेत्र में प्रमुख स्थान हो गया।

वल्लभाचार्य के काव्य में राधा

श्री वल्लभाचार्य ने सुबोधिनी की कारिकाओं में कहा कि गोपियों के रास-प्रसंग में यद्यपि काम की सभी दशाओं का वर्णन मिलता है

किन्तु वास्तव में इस वर्णन में वासना का पुट नहीं है क्योंकि उसमें सभी कुछ अलौकिक है।

उन्होंने राधा को एक ही रूप में देखा है। उनकी विचारधारा दार्शनिक है तथा उनके दर्शन में राधा आत्मा की प्रतीक है। कृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं। वल्लभ-सम्प्रदाय की गोपियाँ पाप और पुण्य से मुक्त, सिद्ध जीवात्माएँ हैं जो कृष्ण-कृपा की विशेष अधिकारिणी एवं साधारण मानव से विशिष्ट हैं। वल्लभ-सम्प्रदाय में जीव, जगत् और ब्रह्म में कोई भेद नहीं। सत्, चित् और आनन्द के विभिन्न योग से इनका निर्माण होता है। जब तीनों गुणों का सद्भाव होता है तब जीव ब्रह्म में परिणत हो जाता है। राधा और कृष्ण में शक्ति और शक्तिमान् का भेद है। रासलीला में राधा रसात्मक सिद्धि की प्रतीक है—उसका नित्य रास अवलोकनीय है :

नित्य रास रस नित्य नित्य गोपीजन वल्लभ।
नित्य निगम जो कहत नित्य नव तन अति दुल्लभ।
यह अद्‌भुत रस रास कहत कछु कहत न आवै।
सेस सहस मुख गावै अजहूँ पार न पावै॥[1]

श्री वल्लभाचार्य ने रास में प्रवेश पाने वाली गोपिकाओं की भेद-संख्या १९ बताई है। अन्यपूर्वा, अनन्यपूर्वा, गुणातीता में से अनन्यपूर्वा और अन्यपूर्वा के तामस, राजस तथा सात्विक गुणों के शुद्ध रूप एवं मिश्रित रूपों के अनुसार नौ-नौ भेद किए गए हैं। इस प्रकार गुणातीता गोपियों को मिलाकर उन्होंने १९ प्रकार की गोपिकाओं का उल्लेख किया है।[2] 'राधा' नाम की स्वामिनी-स्वरूपा गोपी का संकेत वहाँ नहीं मिलता। ऐसी मान्यता है कि राधा नाम का समावेश श्री विट्ठलनाथ ने अपने सम्प्रदाय में किया था और अष्टछाप के कवियों ने उन्हीं के मत को इस सम्बन्ध में ग्रहण किया। उन्होंने राधा की स्तुति में 'स्वामिन्यष्टकम्' तथा 'स्वामिनीस्तोत्र' नामक दो ग्रन्थों की रचना की।

---

१. रासपंचाध्यायी, अध्याय ५, पृ० ८८।

२. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय : डा० दीनदयाल गुप्त।

अष्टछाप

वल्लभाचार्य के पुष्टि-सम्प्रदाय में अनेक वैष्णव दीक्षित हुए जिन्होंने राधा-कृष्ण की भक्ति का प्रसार किया । इनमें से अष्टछाप के आठ कवि विशेष उल्लेखनीय हैं :

वल्लभाचार्य के किसी भी ग्रन्थ में राधा का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता—गोपियों का वर्णन अवश्य है। इनके पुत्र विट्ठलनाथ ने संभवतः अन्य सम्प्रदायगत तथा लोकप्रिय रूप के प्रभाव से वल्लभ-सम्प्रदाय में कान्ता-भाव को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। राधा की स्तुति में इन्होंने 'स्वामिन्यष्टकम्' तथा 'स्वामिनीस्तोत्र' नामक दो सुप्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की। 'शृंगाररसमंडन' की रचना करके गोसाईंजी ने माधुर्य भक्ति की महत्ता स्वीकार की । यद्यपि गौड़ीय सम्प्रदाय की रचनाओं ('भक्तिरसामृतसिंधुः' एवं 'उज्ज्वलनीलमणिः') की भाँति उसमें भक्ति का विशद विवेचन नहीं मिलता, फिर भी इन रचनाओं का झुकाव शृंगारपरक भक्ति की ओर परिलक्षित होता है । उनके समय में वल्लभ-सम्प्रदाय में माधुर्य भक्ति की महत्ता अपने चरम बिन्दु पर थी ।

सूरदास, कुंभनदास, परमानन्ददास तथा कृष्णदास श्री वल्लभाचार्य के शिष्यों में से थे तथा छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास विट्ठलनाथ की शिष्य-परम्परा में थे । इस प्रकार अपने एवं आचार्य के चार-चार शिष्यों को मिलाकर गोसाईंजी ने अष्टछाप की स्थापना की। इनमें से प्रत्येक कवि अपने काल का सुप्रसिद्ध गायनाचार्य भी था । इन कवियों में से सूरदास, नन्ददास और परमानन्ददास, इन तीन की रचनाएँ ही उपलब्ध हैं ।

सूरदास

भक्तगण जीवन की कुंठाओं से दूर, कहीं बहुत दूर भाग जाना चाहते थे । नैराश्यपूर्ण और नीरस लौकिक जीवन में सूर के स्वर ने अलौकिक माधुर्य फूंकने में अद्भुत सफलता प्राप्त की ।

राजनीतिक क्रान्ति के उस युग में भक्तों ने राधा-कृष्ण के जीवन में

अपने भावों का सामंजस्य किया। इस प्रकार उन ऐहिक भावों को, जिनकी भौतिक जीवन में सदैव उपेक्षा ही होती रही थी, एक अलौकिक सम्बल सहज ही प्राप्त हुआ। सूर के भक्ति-मुग्ध अन्तः चक्षुओं ने राधा-माधव की लीला का कोना-कोना झाँक डाला। गद्गद कंठ से उन्होंने अपनी रागात्मक भावनाओं का आरोप आराध्यदेव पर करते हुए उत्तरकालीन भक्तों के सम्मुख प्रतीकात्मक भक्ति प्रस्तुत की।

दार्शनिक सिद्धान्तों द्वारा प्रतिपादित गोपियों का आध्यात्मिक रूप अन्य किसी भक्त में कहाँ तक रचा-बसा, कहना कठिन है, किन्तु सूर का तो रोम-रोम उनकी लीला के वर्णन में विभोर हो नाच उठा।

ब्रजभूमि ब्रह्म का लीला-निकेतन बन गई। ब्रह्म (श्रीकृष्ण) मुक्त जीवात्माओं (गोपियों) के साथ यहाँ नित्य-विहार करते रहे—लीला अनादि है, अनन्त है। यद्यपि सूर ने गोपियों का समष्टि-रूप में ही सर्वत्र वर्णन किया है, व्यष्टि-रूप में चरित्रों का विकास नहीं किया; तथापि इतना स्पष्ट है कि कुछ गोपियों को वे विशिष्टतर मानते हैं, और राधा तो इन शुद्ध-मुक्त जीवात्माओं से कहीं अधिक उन्नत है। वह ब्रह्म (कृष्ण) की आह्लादिनी शक्ति के रूप में अवतरित हुई है। शेष गोपियाँ आनन्द-प्रसारिणी शक्तियाँ हैं, किन्तु मूल शक्ति तो राधा ही है उसका और कृष्ण का सम्बन्ध शक्ति और शक्तिमान् का सम्बन्ध है।

राधा के मान से कवि का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि राधा और कृष्ण तो अभिन्न हैं ही, साथ ही गोपियों से भी राधा की अभिन्नता है। उन्होंने आरम्भ में बड़े सुन्दर ढंग से इस रहस्य की सूचना दी है।[1] राधा का मान वास्तव में भ्रांतिमूलक है। वह कृष्ण के हृदय पर अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर दूसरी गोपी का अनुमान कर कृष्ण से रूठ बैठती है। यहाँ कवि का उद्देश्य दो तत्त्वों से अवगत कराना है। प्रथम तो यह कि शेष गोपियाँ राधा की प्रतिरूप ही हैं और दूसरा यह कि कृष्ण का उनसे सम्पर्क राधा के साथ ही सम्पर्क है। क्योंकि मान के वर्णन की अतिरंजना के कारण कृष्ण का अपराधी-रूप मुखर हो उठा है

१. 'सूर-सन्दर्भ'—नन्ददुलारे वाजपेयी।

और वे एक दक्षिण नायक के रूप में पाठकों के सम्मुख उपस्थित होते हैं।

सोलह हजार गोपिकाओं से कृष्ण का सम्बन्ध दिखाकर कवि ने ब्रह्म (कृष्ण) के प्रेम की व्यापकता के प्रदर्शन के साथ ही साथ अलौकिकता का समावेश करने का प्रयास भी किया है। राधा अधिकांशतः कृष्ण के आलिंगन-पाश में निबद्ध रहती है। मूर्त रूप में राधा-कृष्ण में कोई अन्तर नहीं, किन्तु लीला के हेतु वह दूसरा रूप धारण करती है, तथापि राधा कृष्ण से ऐकात्म्य प्राप्त करने की इच्छुक है। इसीलिए कवि ने अन्त में राधा के कृष्ण-रूप हो जाने का वर्णन किया है :

राधा माधव भेंट भई !
राधा माधव माधव राधा कीट भृंग गति है जु गई ॥
माधव राधा के सँग राँचे राधा माधव रंग रई ॥
माधो राधा प्रीति निरंतर रसना करि सो कहि न गई ॥
बिहँसि कह्यौ हम तुम नहि अन्तर यह कहि कै उन ब्रज पठई ॥
सूरदास प्रभु राधा माधव ब्रज बिहार नित नई नई ॥

ब्रह्म[1] (कृष्ण) ही कर्ता हैं और ब्रह्म (कृष्ण) ही भोक्ता। कृष्ण ही कृष्ण के साथ रास रचते हैं जैसे बालक अपने प्रतिबिम्ब के साथ क्रीड़ा करता है। यह सब मनोवैज्ञानिकों के लिए इन्द्रजाल है। परन्तु राधा-माधव-पुजारियों की यही धारणा उनके काव्यों में सर्वत्र व्यक्त हुई है।

राधा का चरित्र इतना मुखर है कि शेष गोपियाँ उसके प्राबल्य के सम्मुख दब-सी गई हैं, किन्तु फिर भी उनको राधा से कोई शिकायत नहीं, न कोई ईर्ष्या ही है। सूर के काव्य में कुब्जा और यहाँ तक कि बाँसुरी भी कृष्ण के अतिशय सामीप्योपलब्धि के कारण गोपियों की डाह का विषय बन गई है। सखियाँ कृष्ण से मान करती हैं, उसे बुरा-भला भी कहती हैं किन्तु राधा की सृष्टि सूर ने बहुत ऊँची

१. 'महाकवि सूरदास', : नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० ६१।

परिकल्पना के सहारे की है। उसका नाम लेकर वे लोग कृष्ण से हँसी भले ही कर लें, पर डाह-जैसी वस्तु उनके हृदय को स्पर्श नहीं कर पाती। कृष्ण के प्रस्थान पर उन्हें राधा के साथ सहानुभूति भी है। राधा तथा गोपियों के मध्य एक सोपान और द्रष्टव्य होता है, जिस पर आरूढ़ हैं चन्द्रावली और ललिता। यों तो इन दोनों की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, फिर भी सम्भवत: सूर ने इन्हें अन्य मुक्त जीवात्माओं से उच्च धरातल प्रदान करना चाहा है। सूर उन्हें प्रतीक-रूप प्रदान करना चाहते थे या नहीं, यह उनके काव्य में स्पष्ट नहीं हो पाया है।

जनसाधारण के धर्म-नयन भले ही उसे कोरे सांसारिक वर्णों से रंजित समझने का भ्रम करें, किन्तु सूर की राधा ब्रह्म से होली खेलती रही—यही है उसकी अलौकिकता का सबसे बड़ा प्रमाण। उसका स्वरूप वह उत्तरीय है जिसका एक छोर अलौकिक सत्ता ने थामा हुआ है तो दूसरा किनारा लौकिक धरातल का सतत स्पर्श कर रहा है। यह तो दर्शक के दृष्टि-विस्तार का प्रश्न है कि वह उत्तरीय का परिसीमित एक छोर देखकर ही सन्तोष कर ले अथवा दृष्टि के व्यापक प्रसार को ऊँची उड़ान का अवसर प्रदान करे।

राधा की लौकिक लीला में अद्‌भुत और अलौकिक का सफल मिश्रण दृष्टिगत होता है। दोनों तत्त्वों का गुम्फन इस पटुता से कवि ने किया कि मध्यवर्ती रेखा खींचना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव है।

राधा और कृष्ण अतिमानव होते हुए भी पूर्ण मानव हैं। कवि ने उन्हें 'शून्य' के 'गगन' से खींच सामान्य धरातल पर ला खड़ा किया है जहाँ वे भक्तों के साथ आँसू भी ढुलका सकते हैं और स्मित की लहरों में खो भी सकते हैं। ऐसी आँख-मिचौनी खेलने वाला ब्रह्म का युगल रूप (राधा-कृष्ण) ही सूर का आराध्य है। लौकिक दृष्टि से राधा का जितना सुन्दर वर्णन सूर की लेखनी से हुआ, उतना शायद ही कोई अन्य कवि कर पाया है।

सूर की राधा बचपन का भोलापन लिये ब्रज के रंगमंच पर आती है तथा उसके चरित्र का अन्त वहाँ होता है जहाँ पर कि उसका माधव

से तादात्म्य हुआ। चिर-मिलन के प्रगाढ़ आलिंगन में दोनों आबद्ध हो गए।

जीवन की सुदीर्घ पगडंडी पर चलते समय दोनों ने कितने कड़वे घूँट पिये, इनके जितने सुरम्य शब्द-चित्र सूर के काव्य में मिलते हैं—शायद ही किसी और कवि की समर्थ लेखनी उसका वर्णन कर पाये।

राधा विलासिनी नहीं है, उसका तो 'लरिकाई का प्रेम' है। बालपन के क्षण अमूल्य थे जब प्रथम दर्शन ने ही दोनों के हृदय में प्रेम की ज्वाला प्रज्वलित कर दी :

खेलन हरि निकसे व्रज खोरी।
कटि काछनी पितांबर ओढ़े हाथ लिये भौरा चक डोरी ॥

◇ ◇ ◇

औचक ही देखी तहँ राधा नयन विसाल भाल दिये रोरी।
नील बसन फरिया कटि पहिरे बेनी पीठ रुलति झकझोरी।
संग लरिकनी चलि इत आवति दिन थोरी अति छबि तन गोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे नैन नैन मिलि परी ठठोरी ॥

इस प्रथम परिचय में न संकोच था, न थी झिझक। फिर श्याम ने श्यामा को खेलने का आमंत्रण भी दिया तो ऐसा जैसे झगड़ने के लिए तैयार हों :

तुम्हारो कहा चोरि हम लैहैं खेलन चलो संग मिलि जोरी।

◇ ◇ ◇

खेलन कबहुँ हमारे आवहु नन्द सवन व्रज गाउँ।
द्वारे आइ टेरि मोहि लीजे, कान्ह हमारो नाउँ।

इसी प्रकार—

प्रथम सनेह दुहुन मन जान्यौ !
सैन सैन कीनी सब बातें गुप्त प्रीति सिसुता प्रगटान्यौ।

नादान राधा क्या जानती थी कि कृष्ण माखनचोर ही नहीं, अपितु उसका सर्वस्व चुराकर भी चुपके से मथुरा जा बसेंगे। उनका

प्रेम तो वन-सरिता की अतुल जलराशि की भाँति गहन एवं विस्तृत रूप धारण करता गया। इसी मध्य नन्दनन्दन ने माँ से अपनी प्रेयसी का परिचय करा दिया था। माता यशोदा अपने लाड़ले की प्रत्येक बाल-लीला में आनन्द लेती थीं। उसी सहज भाव से उन्होंने राधा को भी ग्रहण किया—अपनी भावी बहू के रूप में।[1] यशोदा ने उसकी माँग गूँथी और नयी फरिया (बिना सिली घघरी) भेंट की। मन-ही-मन वे इस सुन्दर श्याम नवल जोड़ी को सराहती रहीं। और तब तो राधा की प्रसन्नता का कहना ही क्या जब मनचाही बात नन्द ने कह डाली कि यहाँ पास ही खेलना, दूर न जाना। राधा हर्षातिरेक में कह उठी :

> **नन्द बबा की बात सुनो हरि !**
> **मोहिं छाँड़ि के कबहुँ जाहुगे ल्याउँगी तुमको धरि ।।**
> **भली भई तुम्हें सौंप गये मोहिं जान न देहौं तुमको ।**
> **बाँह तुम्हारी नेक न छड़िहौं महरि खीझि हैं हम को ।।**
> **मेरी बाँह छाँड़ दे राधा कर न उपरफट बातें ।**
> **सूर स्याम नागर नागरि सो करत प्रेम की बातें ।।**

और सूर की भविष्यवाणी यथार्थ ही निकली। वह नवल युगल प्रेम-विभोर हो मत्त मयूर की भाँति नाच उठा।

भोले बचपन ने किशोरावस्था में अन्तिम साँसें लीं—अल्हड़ राधा अब वाग्विदग्धा गोपी बन गई। कृष्ण के सान्निध्य की हृदय में उत्कट अभिलाषा होने पर भी किशोरी कृष्णा सखियों के मध्य कन्हैया के निमन्त्रण को स्वीकार नहीं करती :

को जैहै इनके दर !

बड़े आये हैं अपने घर बुलाने वाले—कौन जाता है भला—पर प्रीति को छिपाना इतना सहज नहीं। उसके चपल-चंचल नयनों ने बार-बार कालिन्दी के कछार से आते वेणु-वादन का अनुसरण किया तो

---

१. सूर-सन्दर्भ—(आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की भूमिका से), पृ० २३।

गोपियाँ भी उसकी प्रीति का परिचय पा गईं, और वह 'ठगोरी'-सी अपनी उलझन में स्वयं ही उलझ कर रह गई। व्रजांगनाएँ कब चूकने वाली थीं! उन्होंने छेड़छाड़ का अच्छा अवसर पाया। कभी कहतीं— 'के बैठी रहि भवन आपने काहे के बनि आवें?' किन्तु राधा इन उलाहनों में भी आनन्द का आभास पाती है। रतिप्रिया राधा का वर्णन सूर ने इस प्रकार किया है :

नवल गुपाल नवेली राधा नवे प्रेम रस पागे।
नव तरुवर विहार दोउ क्रीड़त आपु आपु अनुरागे॥

यहाँ सूर विद्यापति और चंडीदास के धरातल पर उतर आये हैं। बचपन के नटखटपन के चित्रण में सूर का स्थान अद्वितीय है, पर यौवन की विलासिनी राधा तक पहुँचते-पहुँचते उनके काव्य में चंडीदास के पदों की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती है।[1] समग्र सूर-साहित्य में एक स्थान पर भी शायद राधिका का उच्छ्वसित रूप नहीं मिलेगा। प्रेम की आकंठपूर्ण कलशी में कभी भी छलकर नहीं आयी। सूरदास की राधिका न तो विलासिनी है, न ग्वालिनी। इन दोनों रूपों का एक विचित्र सामंजस्य ही मानो सूरदास का अभीष्ट प्रतिपाद्य है। इसमें कामुकता का आभास नहीं। यदि अनुराग के आरम्भ में तीव्र आकर्षण, ऐकांतिक मिलनेच्छा और सामाजिक मर्यादोल्लंघन की प्रेरणाएँ काम करती हैं तो प्रथम मिलन के पश्चात् तत्काल ही राधा में प्रेमगोपन, चातुरी, वाग्विलास आदि की सामाजिक भावना जागृत हो जाती है, जो प्रेम के स्वस्थ विकास की परिचायक है :

सोचति चली कुंवर घर ही तें खरिकहिं गइ समुहाइ।
कब देखौं वह मोहन मूरति, जिन मन लियौ चुराइ॥
देखौ जाइ तहाँ हरि नाहीं, चकृत भई सुकुमारि।
कबहूँ इत, कबहूँ उत डोलत, लागी प्रीति तुम्हारि॥

राधा मानिनी है; वह कृष्ण से रूठती है तो मानने का नाम ही

---

१. 'सूर-साहित्य'—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १११।

नहीं लेती। गोपियाँ मनाते-मनाते थक जाती हैं। कृष्ण मूर्च्छित हो जाते हैं, पर राधा मान किये बैठी है। चंडीदास की राधा मानिनी है पर उसका मान शीघ्र ही विलुप्त हो जाता है, सूर की राधा की भाँति वह निकुञ्जों में कृष्ण से पैर नहीं दबवाती। दूसरी ओर विद्यापति की राधा है—उसका जन्म तो रतिक्रीड़ा के लिए ही हुआ है। उसके लिए कृष्ण का क्षण-भर का असान्निध्य भी कितना दुर्लंघ्य है, फिर भला मान करने की तो बात ही और है। सूर ने शृंगार का अतिशय वर्णन किया, किन्तु उसमें वासना का स्पर्श नहीं। ऐसे प्रसंगों को कुछ तो सूर ही बचा गये हैं—कुछ ब्रह्म के प्रति निवेदन होने के कारण भक्ति की चुनरिया में समा जाते हैं।

सूर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने संयोग के साथ विप्रलंभ शृंगार के भी सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं। वात्सल्य, संयोग, शृंगार और विप्रलंभ के जिस किसी पक्ष को भी उन्होंने अपने स्पर्श का सौभाग्य प्रदान किया, उसे सुन्दरतम रूप दे दिया। मिलन की इस हँसी-खुशी के फलक पर विरह के अश्रुरंजित चित्र अत्यधिक मुखर हो उठे हैं। दो विरोधी तत्त्वों का मिश्रण कवि की सुरम्य कलात्मकता का द्योतक है। कहाँ क्षणभर का विरह भी राधा के सुकोमल हृदय को अधीर कर डालता था और कहाँ अब कि विरह की अन्तिम सीमा का निर्धारण करना भी असम्भव हो गया। कौन जाने, कृष्ण कब आयेंगे। वे तो अपरिमित समय के लिए मथुरा चले गये। राधा का विरह उसकी सबसे बड़ी पराजय है :

अति मलीन वृषभानु कुमारी।
अधोमुख रहति उरध नहिं चितवति ज्यों गथ हारे थकित जुआरी।

प्रश्न उठता है कि क्या यह प्रेम उभयपक्षीय नहीं था? किन्तु उद्धव को सन्देश देते समय ही कृष्ण ने कहा :

ऊधौ, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
जबहिं सुरति आवत वा सुख की जिय उमगत तनु नाहीं!

(भ्रमर-गीत)

तो क्या गोपियों का रोना-धोना 'ठाली' बैठे का खेल नहीं था ? इतनी दूर चलकर क्या वे कृष्ण के दर्शन नहीं कर सकती थीं ? अन्यथा कृष्ण ही इतने निर्दय क्यों बन बैठे कि मथुरा जाकर फिर लौटने का नाम ही नहीं लिया ? इन सबके पीछे दो कारण हैं—एक मनोवैज्ञानिक, दूसरा दार्शनिक। दार्शनिक कारण तो यह कि उद्धव के द्वारा निर्गुण का सन्देश भेजकर कृष्ण निर्गुण पर सगुण ब्रह्म की विजय दिखाना चाहते थे। दूसरा मनोवैज्ञानिक कारण यह था कि जब स्वयं कृष्ण ने गोपियों को उस कठोर परीक्षा में डाला तो फिर उनके आत्म-सम्मान ने उन्हें कृष्ण के पास मथुरा जाने की अनुमति नहीं दी।

वह वृषभानुजा रात-दिन विरह की भीषण अग्नि में जल रही है :

अति मलीन वृषभानु कुमारी।
हरि स्रमजल अन्तर तनु भीजै ता लालच न धुवावति सारी॥
अधमुख रहति उरध नहिं चितवति ज्यों गथ हारे थकित जुआरी।
छूटे चिकुर, बदन, कुम्हिलानें, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी॥
हरि सँदेस सुनि सहज मृतक भई, इक बिरहिन दूजे अलि जारी।
'सूरस्याम' बिनु यों जीवति हैं ब्रज बनिता सब स्याम दुलारी॥

तो भी कृष्ण को दोष नहीं देती। उसे लगता है कि उसके प्रेम में ही कहीं छिद्र शेष है :

सखी री, हरिहिं दोष जनि देहु।
तातें मन इतनौ दुःख पावत, मेरौ कपट सनेहु।

उसे आश्चर्य है कि प्रिय के इतने कठोर विरह में भी प्रकृति ज्यों-की-त्यों कैसे बनी रही :

मधुवन तुम कत रहत हरे !

पावस के मिस जैसे प्रकृति रो उठती है—वह मधु-ऋतु, जिसके सुरभित समीर और पुष्पित निकुंजों में राधा के अतीत जीवन की मधुरतम स्मृतियाँ लिपटी हुई हैं—आज उसके मानस पर जाने कैसी

विषाद की छाया अंकित कर देती है। निर्मम रात का तो कुछ कहना ही नहीं; वह तो नागिन है :

नागिनि भई काली रात !

◇ ◇ ◇

दूर करहु बीना कर धरिबौ !

मोहे मृग नाहीं रथ हाँक्यौ नाहिन होत चन्द को ढरिबौ ॥
बीती जाहि पै सोई जानै कठिन है प्रेम फाँस को परिबौ ।
जब तें बिछुरे कमलनयन सखि, रहत न नयन नीर को गरिबौ ॥
सीतल चन्द अगिनि सम लागत कहिये धरौ कौन बिधि धरिबौ ।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस बिनु सब झूठौ जतननि को करिबौ ॥

दुविधा, विषाद और विरह के थपेड़े राधा की आयु को आगे धक्का देते हैं। सारा ब्रज उसकी सहानुभूति में दुःखी है। पर कृष्ण हैं कि अन्तर्यामी होकर भी उसकी दशा को नहीं समझ पाते। कृष्ण में दृढ़ विश्वास ही क्षीणकाय राधा के जीवन को सँभाले है।

तभी एक दिन उद्धव को देख ब्रजांगनाएँ चाव से दौड़ी चली आयीं। कृष्ण ने क्या सन्देश भेजा है—सभी को यह जानने की उत्सुकता थी। उद्धव के निर्गुणपरक आख्यान पर उन्होंने कितने ही उलाहने दे डाले। पर राधा उस समय भी वहाँ नहीं थी। उसके स्वाभिमान ने उसे वहाँ जाने की अनुमति नहीं दी। लौटकर उद्धव ने कृष्ण से कहा कि राधिका अपने घर के दरवाजे पर खड़ी थी। अपने मान की दृढ़ता के कारण वह दो पग भी आगे न बढ़ सकी :

चलत चरन गहि रही गई गिरि, खेद सलिल भयभीनी ।
छूटी वट भुज फूटी बलया टूटी लर फटी कंचुक झीनी ॥

तथा—

जब सँदेसा कहन सुन्दरि गवन मो तन कीन ।
खसी मुद्रा चरन अरुझी गिरी भुवि बलहीन ॥

कंठ बचन न बोलि आवै हृदय परिहस भीन ।
नयन जल भरि रोइ दीनो ग्रसित आपद दीन ॥
उठी बहुरि सँभरि भट ज्यों परम साहस कीन ।
सूर, प्रभु कल्याण ऐसे जिवहि आसा लीन ॥

क्या राधा-कृष्ण के पास सन्देश नहीं भेज सकती थी ? पर उसने व्रज के कूप सन्देशों से नहीं भरे। यों कोई और पथिक होता तो वह कुछ कहती भी, किन्तु अपने प्रिय के साक्षात् मित्र के सम्मुख भला वह क्या कहे ? वे तो सब-कुछ जानते ही होंगे। कैसी विडंबना थी विधि की ! पर राधा के मौन ने वाणी से कहीं अधिक, बहुत-कुछ कह डाला। भावों के उच्छलन के साथ वाणी में अवरोध हो जाता है, और ऐसी ही कुछ राधा की दशा थी। वह चुपचाप आँसू बहाती रही। किन्तु उसका यह मौन पाठक की विचारधारा को एक नवीन नाटकीय मोड़ प्रदान करता है। पाठक को विरहिणी से बहुत-कुछ सुनने की आशा थी—किन्तु उससे भी अधिक उसके मौन ने कह डाला। राधा 'साकेत' की उर्मिला और गुप्तजी की यशोधरा से कम मानिनी नहीं है। उसके चरित्र का उन दोनों से बहुत साम्य है। गौतम सिद्धि प्राप्त करके भी अपनी यशोधरा को मनाने आते हैं, लक्ष्मण उर्मिला के पैरों में लोटकर अपनी निष्ठुरता का कलंक धोना चाहते हैं तो कृष्ण ने राजा होने पर भी अपनी गोपिका को बिसारने का साहस नहीं किया। व्रज में रुक्मिणी के साथ जब वे आए तो रुक्मिणी ने पूछा :

पिय, इनमें को वृषभानु-किसोरी ?

और उससे परिचय प्राप्त करके :

रुक्मिणी राधा ऐसे भेंटीं ।
जैसे बहुत दिनन की बिछुरी एक बाप की बेटी ।

फिर, विरह की चरम सीमा 'मिलन' है :

राधा माधव भेंट भई ।
राधा माधव, माधव राधा कीट भृंग गति ह्वै जु गई ॥

माधव राधा के रँग राँचे राधा माधव रंग रई।
माधव राधा प्रीति निरंतर रसना करि सो कहि न गई ।।

बालिका, किशोरी, रतिप्रिया, चतुर, वियोगिनी – इस प्रकार राधा नाना रूपों में नारी-हृदय की सुन्दर छटा लेकर सूर के काव्य में अवतरित हुई है।

भारतीय संस्कृति से रंजित होने के कारण सूर की राधा स्वकीया है, परकीया नहीं। भारतीय परम्परा के अनुसार प्रेम की सार्थकता तभी है, जब वह परिणय का रूप धारण कर ले। एकपक्षीय असफल प्रेम को पुरातन काल से उत्कृष्ट नहीं माना जाता रहा। संस्कृत-साहित्य में तो कहीं इस प्रकार के प्रेम के दर्शन ही नहीं होते जिसकी परिणति परिणय में न होकर, अधूरापन ही बना रहे।

राधा के द्वारा "वास्तव में सूर ने विरहिणी के एक नवीन वर्ग की सृष्टि की है। इनमें हमें काव्यों की संस्कारमयी नायिका और लोकगीतों की निश्छल ग्रामवधूटियों का मध्यवर्ती रूप मिलता है। वह काल्पनिक विरह नहीं अपितु नैसर्गिक जीवन का सहज अंग है। इनमें न राजसी जीवन की गरिमा और आभिजात्य है, और न नागरिक जीवन की विलास-भावना। इसलिए उसके विरह में न तो नागमती और सीता का-सा गम्भीर संयम मिलता है, और न रीति-काव्य की नायिकाओं-जैसा प्रदर्शन ही। सीधी-सादी ग्वालिनी है, जो न किसी प्रकार कृत्रिम मर्यादा का बन्धन मानती है, और न विरह-निवेदन की ऊहात्मक शैली का ही प्रयोग करना जानती है। किसी प्रकार का छल न होने के कारण विरह उपालम्भ से मुखर है।"[1]

राधा का इतना सर्वांगीण वर्णन हिन्दी-साहित्य के किसी अन्य कवि ने नहीं किया। राधा-चरित्र के विकास में सूर का अद्वितीय स्थान है। इन्हीं की परम्परा एवं उद्भावनाओं को उत्तरकालीन राधा-कृष्ण-भक्तों ने ग्रहण किया।

---

१. 'हिन्दी-कविता में विरहिणी'—डॉ० नगेन्द्र ('साहित्य-सन्देश,' मार्च-अप्रैल-अंक, १९४७)

नन्ददास

रचना एवं समय की दृष्टि से सूर के बाद नन्ददास का ही नाम आता है। इन्होंने अपने अधिकांश ग्रन्थों में राधा और कृष्ण को स्थान दिया। यहाँ तक कि कोश-ग्रन्थ में मानिनी राधा का मान एवं कृष्ण की दूती के द्वारा मनुहारें प्रस्तुत कराने से भी वे नहीं चूके हैं।

इनकी राधा सूर की भाँति ही स्वकीया है। 'श्याम सगाई' में राधा-कृष्ण की सगाई की एक रोचक कथा उनके काव्य की मौलिक उद्भावना है। इसके अनुसार यशोदा राधा की धवल कान्ति से इतनी प्रभावित हुईं कि उसको अपनी बहू बनाने की उन्होंने ठान ली :

इक दिन राधे कुँवरि स्याम घर खेलन आई,
चंचल और विचित्र देखि जसुमति मन भाई।
नंद महिर ने तब कह्यौ, देखि रूप की रास,
यह कन्या को श्याम कौं गोविन्द पुजवैं आस।
—कि जोरी सोहती।[1]

एक दिन उन्होंने राधा की माँ कीर्ति के पास अनुमति लेने किसी को भेजा :

नीकी राधे कुँवरि, स्याम इत मेरौ नीकौ।
तुम किरपा करि करौ लाल मेरे कौ टीकौ॥

तो कीर्ति ने यह कहकर टाल दिया :

कीरति उत्तर दियौ, सुनो नहिं करौ सगाई,
सूधी राधे कुँवरि, स्याम है अति चरवाई।
नंद ढीट लँगर महा, दधि माखन कौ चोर,
कहत सुनत लज्जा नहीं, करत औरही और।
—कि लरिका अचपलौ।

यशोदा को बहुत धक्का पहुँचा। उधर राधा स्वयं कृष्ण की रूप-

---

१. 'नन्ददास-कृत स्यामसगाई-प्रसंग' : शुक्ल, पृ० ११५।

सौन्दर्य-माधुरी का पान कर चुकी थी। इस घटना ने उसका चैन भी छीन लिया। ऐसी विषम स्थिति में उसकी मेधाविनी सखियों ने एक युक्ति सुझाई और शोर मचा दिया कि राधा को साँप ने काट लिया है। राधा ने लेटकर अभिनय किया। माँ का घबराना तो स्वाभाविक था ही। किसी ने कहा, कृष्ण बहुत अच्छा गारुड़ी है। कीर्ति ने घबराकर यशोदा को कहला भेजा कि यदि कृष्ण उनकी राधा को ठीक कर देगा, तो वे राधा से उसकी सगाई सहर्ष ले लेंगी। नटखट कृष्ण आये। राधा का अभिनय समाप्त हो गया—वह ठीक हो गई और इस प्रकार श्याम की सगाई राधा के साथ हुई :

सुनत सगाई श्याम ग्वाल सब अंगनि फूले।

नन्द की राधा-कृष्ण-विषयक रचनाओं में भाषा के लालित्य को छोड़कर अन्य कोई विशेष नवीन उद्भावना दृष्टिगत नहीं होती। उनकी कल्पना, काव्य और भाव सूर की प्रतिच्छाया मात्र जान पड़ते हैं। जिस प्रकार सूर के 'भ्रमरगीत' में गोपियों का समष्टि रूप में वर्णन है वैसे ही नन्ददास के 'भ्रमरगीत' में भी राधा के चरित्र का विलग विकास नहीं किया गया।

नन्ददास ने राधा के सौन्दर्य का मधुर वर्णन किया है। इनके काव्य में राधा और कृष्ण के घोर श्रृंगारिक वर्णन मिलते हैं। इनकी राधा स्वकीया होते हुए भी आचरण परकीया का-सा करती है। परकीया भाव से राधा को स्मरण करने के कारण ही उत्कट प्रेम की चरम अभिव्यक्ति इनके काव्य में मिलती है। राधा-कृष्ण केलि करते, नृत्य में रत, पुलिन पर घूमते एवं हिंडोले में झूलते हुए पाठकों के सम्मुख आते हैं :

हिंडोले माई झूलत गिरिधर लाल !
सँग राजत वृषभानु नन्दिनी अँग अँग रूप रसाल ॥
मोर-मुकुट मकराकृत कुण्डल उर मुक्ता वनमाल।
रमकि-रमकि झूलत पिय-प्यारी सुख बरसत तिहि काल ॥

१. नन्ददास : शुक्ल, पृ० ३३५।

हँसत परस्पर इत-उत चितवत चंचल नैन बिसाल।
नंददास प्रभु की छवि निरखत विवस भई ब्रजबाल ॥

शृंगार की अतिशयता ने इनकी रचनाओं को कहीं-कहीं विलासिता एवं अश्लीलता की परिधि में भी पहुँचा दिया है। इसी से संभवतः उन्हें पाठकों के सम्मुख अपनी विचारधाराओं का स्पष्ट उल्लेख करना पड़ा :

मेरे विषै जु मति अनुसरै, सो मति बहुरि न विषै संचरै।
भूजित धान जगत में जैसे, बीज के काज न आवै तैसे ॥[1]

'सिद्धान्त-पंचाध्यायी' में नन्ददास ने पाठकों को सावधान किया है कि वे कृष्ण-लीला के शृंगारमय काव्य को लौकिक बुद्धि हटाकर पढ़ें अन्यथा न पढ़ें। यदि राधा-कृष्ण के सम्बन्ध को लौकिक रूप देकर वर्णन किया जाय, और उसमें किसी आध्यात्मिक भाव के आरोप की ओर कवि संकेत न करे, तो वास्तव में साधारण मनुष्य की अधोगामिनी प्रवृत्ति इस वर्णन में लौकिक विषयों की उत्तेजना का ही प्रभाव पाएगी। कवि पाठकों से प्रार्थना करता है—'हे प्रेम-रस के रसिक सज्जनो! आप इस कथा को भावुक (सरस) मन से सुनें और इसके सुनने से जो आनन्द मिले, उस आनन्द और रास के भाव पर भली-भाँति विचार करें!'

हो सज्जन सब रसिक सरस मन के यह सुनिये!
सुनि सुनि पुनि आनन्द हृदै ह्वै नीके गुनिये!

इनकी दार्शनिकता में कोई सन्देह नहीं; किन्तु इन्होंने राधा को किसी नये मोड़ पर लाकर खड़ा नहीं किया। एक वैशिष्ट्य इनके काव्य में अवश्य है जो किसी अन्य अष्टछाप के कवि में नहीं मिलता। वह यह कि एक काव्य में राधा-कृष्ण की सगाई का वर्णन किया है—तथा दूसरे (रुक्मिणी-मंगल) में कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह का सांगोपांग वर्णन है। अन्य कवियों ने भले ही कृष्ण की विवाहिता रुक्मिणी एवं

---

१. 'नन्ददास' : दशम स्कन्ध, बाईसवाँ अध्याय—शुक्ल, पृ० २९१।

कुब्जा का उल्लेख किया हो, किन्तु विवाह का इतना सांगोपांग वर्णन किसी राधा-कृष्ण के उपासक ने नहीं किया। उन्होंने अपनी किसी रचना में भी राधा को गौण नहीं होने दिया। किन्तु इनके 'रुक्मिणी-मंगल' में तो बेचारी राधा का नाम भी नहीं मिलता। सम्भवतः उस युग की बहुविवाह-प्रथा की प्रतिच्छाया-रूप ही कृष्णभक्तिपरक काव्यों में उसके अनेक विवाहों का वर्णन है—किन्तु उत्तरकालीन भक्तों ने राधा के विवाह को अथवा परकीयात्मक प्रेम को अधिक प्रबल रूप देने का यत्न किया है।

नन्ददास के काव्य में भी चतुर राधा मुखर तथा चंचल रूप में पाठकों के सम्मुख आती है, पर सूर की पृष्ठभूमि विद्यमान होने के कारण उसमें राधा के चरित्र-विकास में योग देने वाली नवीन उद्भावनाओं के दर्शन नहीं होते।

परमानन्ददास

सांप्रदायिक ऐक्य के कारण यद्यपि राधा का आध्यात्मिक पक्ष अष्टछाप के कवियों में वही रहा जो सूर के काव्य में मिलता है, किन्तु लौकिक स्वरूप में कुछ अन्तर आता गया। वह अन्तर भी भावना का नहीं, अभिव्यक्ति-मात्र का है; फिर भी परमानन्ददास एवं सूर की रचना-शली तथा भाव और कल्पना में इतना साम्य है कि लेखक का नाम पढ़ने से पूर्व दोनों के पदों को विलग करना कोई सहज कार्य नहीं।

परमानन्ददास ने इष्ट युगल के सुन्दर चित्र उपस्थित किए हैं। अनेक रसात्मक मुग्धकारी चित्रों की उन्होंने सृष्टि की है, इनके काव्य में तुलसी के काव्य की-सी व्यापकता तो नहीं है, परन्तु सूर की तरह परमानन्ददास की अनुभूति भी छोटे क्षेत्र में गहरी उतरी है।[1]

राधा के हृदय में कृष्ण के प्रति बाल-सुलभ स्नेह अंकुरित हुआ, और फिर वही शनैः-शनैः यौवन के उन्मत्त प्रणय में परिणत हो गया। उसकी विभिन्न दशाओं के चित्र परमानन्द की लेखनी से अपूर्व रूप लेकर अवतरित हुए। पूर्वराग की अनेक अवस्थाओं का वर्णन करता हुआ कवि प्रणय की ओर बढ़ता है। राधा स्वकीया नायिका है।

१. 'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय' : डॉ० दीनदयाल गुप्त, पृ० ६६६।

परकीया गोपियों को कवि ने दूती के रूप में चित्रित किया, और सम्भवतः रीतिकाल में अत्यन्त मुखर रूप से विकसित होने वाली दूती-परम्परा का सुझाव, इन्हीं काव्यों से, परवर्ती कवियों ने ग्रहण किया।

राधा-माधव-लीला में परमानन्ददास ने विभिन्न भाव-भंगिमाओं मात्र का ही चित्रण किया है; घटनाओं के आवर्त्त में पड़े पात्रों का चरित्र-विकास उनका उद्देश्य नहीं था। राधा-कृष्ण के संयोग को इन्होंने अनेक रूपकों से आकर्षक रूप प्रदान करने का यत्न किया है :

शोभित नवकुञ्जन की छवि भारी।
अद्भुत रूप तमाल सो लपटी कनक बेलि सुकुमारी।।
गदन सरोज लहलहे लोचन निरखि छवी सुखकारी।
परमानंद प्रभु मत्त मधुप है श्री वृषभानु सुता फुलवारी।।

अभिसारिका राधा को दूती उसके प्रियतम के समीप ले चलती है :

सुन राधा, एक बात भली !
तू जनि डरै रैनि अँधियारो, मेरे पाछे आउ चली।

सुरतान्त राधा—

चली उठि कुँज भवन तें भोर।
डगमगात लटकत लट छूटें पहरे पीत पटोर।।

राधा-कृष्ण का प्रेम प्रगाढ़ता की चरम सीमा तक पहुँच चुका था। एक-दूसरे से क्षणभर का विछोह सहना भी दोनों के लिए दुरूह था। पर जब वे मिल पाते तो प्रेम के अद्भुत रस से सराबोर हो उठते। मेंह में नेह का आभास मिलता और श्रीकृष्ण झूला डालते। दोनों ऊँची-ऊँची पेंगों में आत्मविभोर हो उठते :

झूलत नवल किशोर किशोरी।
उत ब्रज भूषण कुंवर रसिकवर इत वृषभान नंदिनी गोरी।।
नीलांबर पीतांबर फरकत उपमा घनदामिनि छवि गोरी।
देखि देखि फूलति ब्रजसुन्दरि देत झुलाये गहे कर डोरी।।

हास-विलास, विरह, प्रम, मिलन, मान के अनेकानेक चित्र कवि ने प्रस्तुत किए हैं। किन्तु इनके चित्रों का फलक भी सूर के समान ही है—वर्ण एवं उनकी संघटना भी। कवि की मौलिकता के दर्शन नहीं होते। सम्भवतः इसलिए कि सूर पहले ही साहित्य को इतना कुछ दे चुके थे कि और कुछ देने को रहा ही नहीं।

जगतानन्द

वल्लभ-सम्प्रदाय में राधा का नामोल्लेख अत्यन्त विरल रूप में दृष्टिगत होता है। जगतानन्द के समस्त काव्य में मात्र दो ही पद्य ऐसे हैं जिनमें 'राधा' का नामोल्लेख उपलब्ध है। उन्होंने इष्ट युगल को समान रूप से महत्ता प्रदान की है।[1] राधा के बिना कृष्ण केलि-क्रीड़ा का प्रसार करने में असमर्थ रहते हैं। श्री जगतानन्द ने राधा-कृष्ण की भक्ति को चिरस्थायी धन माना है :

राधा माधो परमधाम शुक व्यासन फव गई लूट।
इह धन खरचो खुटत नहीं सो चोर लेत नहीं लूट ॥[2]

ब्रजवासीदास

श्री ब्रजवासीदास के काव्य पर सूरदास का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित है। राधा-कृष्ण के केलि-क्रीड़ा के चित्र अंकित करने से पूर्व उन्होंने बाल्यावस्था के प्रथम परिचय को युगल-उपाय का मूल उत्स उद्घोषित किया है। श्री ब्रजवासीदास के युग तक वल्लभ-सम्प्रदाय में युगलोपासना की प्रतिष्ठा हो चुकी थी, अतः उनके काव्य में उक्त तथ्य की स्पष्ट स्वीकृति द्रष्टव्य है :

बन्दौं युगल किशोर, रूपराशि आनंदघन।
दोऊ चंद चकोर, प्रीति रीति रस वश सदा ॥[3]

वल्लभ-सम्प्रदाय के कवियों ने राधा के आह्लादिनी रूप को ही

---

१. ब्रज-विलास—उपोद्धात, पृ० २।
२, ३. दोहरा साखी, सं० ६१, ८।

विशेष रूप से अपनाया। राधा-कृष्ण की अनेक लीलाओं का सुन्दर चित्रण इनके काव्य में मिलता है। किन्तु बँगला-कविता में जितना उपाख्यान-माधुर्य और वैचित्र्य है उतना हिन्दी के वैष्णव-साहित्य में दृष्टिगत नहीं होता। सम्भवतः इसका कारण यह हो कि हिन्दी वैष्णव कवियों में से अधिकांश वल्लभाचार्य की परम्परा के अनुयायी थे। इन लोगों ने भी राधा-कृष्ण की युगलोपासना को ग्रहण किया है, किन्तु इनके साहित्य में उतनी मुखरता से लीलावाद को मूलभूत तत्त्व के रूप में नहीं दिखाया गया जितना कि बंगीय साहित्य में।[1]

१. 'श्री राधा का क्रमिक विकास' : शशिभूषण दासगुप्ता, पृ० २८० ।

७

राधावल्लभ-सम्प्रदाय में राधा

राधा-मंदाकिनी का मूल स्रोत श्री राधावल्लभ-सम्प्रदाय है। इस मत में मुख्य रूप से राधा की लौकिक लीलाओं का ही वर्णन है। दार्शनिक तत्त्व का यदि पूर्णाभाव न मानें तो कह सकते हैं कि दार्शनिकता का प्रतिपादन अत्यन्त नगण्य रूप से किया गया है। सम्प्रदाय का प्रतिपाद्य प्रेमलक्षणा भक्ति है। प्रेमाभक्ति का मूलतत्त्व प्रेम ही है। भक्त के सम्मुख मुक्ति की कोई महत्ता ही नहीं है। राधा के चरणों में सर्वस्व अर्पित करना ही भक्त का एकमात्र उद्देश्य है। इसी प्रेम में विभोर उसका कंठ अनायास गा उठता है। द्वैताद्वैत के आवर्त्त में न पड़कर उन्होंने राधा-वल्लभ से सीधा नाता जोड़ा है। फिर भी आलोचकों ने इसे दार्शनिकता के घेरे में घसीटने का खासा प्रयास किया। उनके अनुसार राधा-कृष्ण के सहचर-सहचारी-सम्बन्ध में दार्शनिकता का समावेश करने के लिए पर्याप्त क्षेत्र विद्यमान है। इस मत में निर्विकल्प समाधि के लिए स्थान नहीं।[१] अखिल ब्रह्मांड में व्याप्त होकर अपने नित्य आनन्द की अभिव्यक्ति करने वाली अनादि वस्तु का नित्य-रूप राधा को माना। राधा नित्यभाव है, श्रीकृष्णानन्द-रूपा है।

प्राय: श्री राधावल्लभ-सम्प्रदाय की रचनाओं के पठनोपरान्त राधा में शक्ति का आभास हो जाता है, किन्तु यह धारणा नितान्त भ्रामक है क्योंकि उसका मात्र कान्ता-रूप ही इस सम्प्रदाय में गृहीत है—जगज्जननी रूप का पूर्णाभाव है। राधा को रस की अधिष्ठात्री के रूप में ही मतानुयायियों ने अपनाया।

---

१. 'राधावल्लभ-सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य' : — डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० १७३।

श्री हितहरिवंश जी

कुछ समय तक श्री राधावल्लभ-सम्प्रदाय को निम्बार्क-सम्प्रदाय की शाखा माना जाता रहा, किन्तु अर्वाचीन शोधों ने शीघ्र ही इस भ्रम का निवारण कर दिया। श्री राधावल्लभ-सम्प्रदाय के जन्मदाता श्री हित-हरिवंश जी थे। उन्होंने अपनी अनेक रचनाओं से संस्कृत एवं हिन्दी-साहित्य को विभूषित किया। व्रजभाषा में उनकी केवल दो रचनाएँ प्राप्त हैं :

१. हित-चौरासी,

२. स्फुट वाणी।

इन रचनाओं में उन्होंने कान्ता राधा की प्रत्येक भावभंगिमा अंकित कर दी है। यद्यपि प्रत्येक वैष्णव सम्प्रदाय में राधा के लिए यथेष्ट स्थान रहा है, किन्तु इस मत की विशेषता यह थी कि इसमें राधा को कृष्ण से भी ऊपर उठा दिया गया। इससे पूर्व राधा को इतना महान् स्थान कदाचित् किसी भी अन्य सम्प्रदाय ने प्रदान नहीं किया था। राधा-वल्लभ-सम्प्रदाय से पूर्व राधा कृष्ण की आराधिका अथवा प्रेयसी के रूप में ही आती रही थी, किन्तु इस मत में स्थान का कुछ ऐसा विपर्यय हुआ कि कृष्ण राधा के आराधक, सेवक और प्रेमी बन बैठे। राधा की अनुकंपा के बिना कृष्ण की आराधना करना उतना ही व्यर्थ है, जितना हथेली पर सरसों बोने का प्रयास। 'स्फुट वाणी' में राधा-विषयक मान्यता स्पष्ट है :

रहौ कोउ काहू मनहिं दिये।
मेरे प्राननाथ श्री श्यामा शपथ कहौं तृन छिये।।
जे अवतार कदंब भजत हैं, धरि दृढ़ व्रत जु हिये।
तेऊ उमगि तजत मर्य्यादा, वन विहार रस पिये।।
खोये रतन फिरत जे घर घर कौन काज ऐसे जिये।
जै श्री हितहरिवंश अनत सचु नाहीं बिन या रजहिं लिये।।

श्री हित हरिवंश की प्रेमाभक्ति का परिचय पाना साधारण जन का नहीं, किसी पुण्यात्मा संत का ही अधिकार है। इस भक्ति में न तो

---

१. भागवत-सम्प्रदाय—बलदेव उपाध्याय, पृ० ४२४।

विधि के लिए स्थान है, और न निषेध का निरोध ही मिला है। राधा के चरणामृत की अनन्य उपासना ही भक्त के जीवन का लक्ष्य है और राधा-कृष्ण के केलिकुंज की खवासी करना ही उसका उद्देश्य माना गया है।

राधावल्लभीय भक्तों ने श्रृंगार रस के संयोग-पक्ष को ही अधिक महत्त्व दिया है। वियोग की तड़पन के पक्ष में ये कविगण नहीं रहे। सान्निध्य के सुखात्मक पक्ष की व्याख्या ही इनके पदों में अधिक रही है। जिस सम्प्रदाय में संयोग पक्ष की जितनी अधिक व्याख्या हुई, उसका प्रतिपादन साधकों के लिए उतना ही अधिक दुरूह हो उठा। इसका प्रधान कारण यह है कि संयोग की उत्कट श्रृंगारिकता से उद्बुद्ध विचार बाहर निकलने के लिए मार्ग ढूँढ़ते हैं। इसी से साधकों के फिसलने की सम्भावना श्रृंगार-आधिक्य के साथ बढ़ती जाती है।

श्री हित जी की काव्य-कृतियों में हृदय प्रबल है, कलात्मकता गौण। कलापक्ष नगण्य न रहकर भी हृदय की भावुकता का ही पोषक बना रहा।

श्री हित जी की सम्मति में जीवात्मा की चरम सिद्धि यही है कि वह राधा की सखी के रूप में निकुन्ज-रंध्रों से उनकी केलि-लीला के दर्शन कर सके। ऐसी सखी का स्थान परम सौभाग्य से प्राप्त होता है। वह राधा के चरणों में चरमोत्सर्ग करने के हेतु इच्छुक रहती है। राधा-नाम के उच्चारण-मात्र में इतनी शक्ति है कि वह अनेकानेक पापों एवं कष्टों का नाश कर सकता है। नित्य-प्रति राधा का स्मरण करने वाली सखियों के चरण-कमलों का सिद्धियाँ चुम्बन करती हैं। विविध शक्तियों से युक्त राधा आनन्द का प्रसार ही नहीं करती अपितु वह कल्याणदायिनी भी है। वह अतीव सुन्दरी है, सर्वगुण-सम्पन्ना, प्रेम और वात्सल्य की साक्षात् प्रतिमा है। वह रति-प्रवाह की लहरियों की संचारिका है। भक्तों की एकमात्र गति और मति वही है। कृष्ण भी राधा के चरणों में ही शक्ति पाते हैं।

राधा-माधव का सम्बन्ध दाम्पत्य-भाव से अनुप्राणित है। श्री हित जी ने राधा को स्वकीया मानते हुए भी उस पर परकीयात्मक

भावनाओं का आरोप किया। उन्होंने इन दोनों भावों में से किसी एक का अभाव भी चरित्र-विकास की अपूर्णता का द्योतक माना। राधा यद्यपि कृष्ण से पत्नी का-सा व्यवहार करती रही, किन्तु परकीया होने के कारण उसके प्रेम की उत्कण्ठा, सान्निध्य प्राप्त करके भी, ज्यों-की-त्यों बनी रही। नित्य-केलि में रत राधा बाह्य वातावरण से पूर्ण निरपेक्ष रहती है।

राधा-विषयक पदों हम को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं :

१. राधा का रूप-वर्णन।
२. मनोवैज्ञानिक वर्णन।
३. नित्य-विहार वर्णन।

रूप-वर्णन की दृष्टि से श्री हित जी का काव्य अपूर्व है। कृष्ण के नेत्र राधा के अद्वितीय सौन्दर्य में जैसे उलझ कर रह जाते हैं। रूप में भी कवि ने विशेष रूप से नेत्रों का वर्णन किया है :

कहा कहौं इन नयनन की बात !
ये अलि, प्रिया अंबुज रस अटके अनत न जात ॥

कृष्ण निर्निमेष दृष्टि से उसकी रूप-माधुरी का पान करते रहते हैं। कभी दोनों कुंज में लीला करते हैं तो कभी झूले की ऊँची पींगों में ही अपने को खो बैठते हैं :

अति अनुराग भरे मिलि गावत, सुर मंदर कल घोर।
बीच बीच प्रीतम चित चोरत, प्रिय नैनन की कोर ॥
अबला अति सुकुमारि डरत मन, कर हिंडोर झँकोर।
पुलकि पुलकि प्रीतम उर लागत, दे नव उरज अँकोर ॥
—हित-चौरासी

एक ओर सुख-सरिता प्रवाहित हो रही है तो दूसरी ओर विरह का आभास भी पाठक सहज पा लेता है :

चलहि किन मानिनि, कुञ्ज कुटीर !
तो बिनु कुँवरि कोटि बनिता जुत, मथत मदन की पीर ॥

गद्‌गद सुर बिरहाकुल पुलकित, स्रवत विलोचन नीर।
कृसि कृसि यों वृसभान नंदिनी, विलपत विपिन अधीर ।।

प्रेम की तन्मयता का वर्णन करते हुए श्री हित जी कहते हैं :

दोउ जन भीजत अटके बातन !
सघन कुंज के द्वारे ठाड़े अंबर लपटे गातन ।।
ललिता ललित रूप रस भीजी बूंद व बूंद बचावत पातन।
हित हरिवंश परस्पर प्रीतम मिलवति रतिरस छातन ।।

नित्य-विहार के वर्णन में कवि सिद्धहस्त थे । सैद्धान्तिक श्रृंगार का वर्णन ऐहिक शैली पर होते हुए भी वासनापरक दृष्टिगत नहीं होता । नितान्त लौकिक शैली पर चलते हुए उनकी अन्तःभावना मुखर हो गई है—और लगता है कि वे उसी के रहस्यात्मक आनन्द में डूब जाते हैं :

कोमल किसलय सयन सुदेशल ता पर स्याम निदेशित भोरी ।

◇ ◇ ◇

आलस जुत इतरात रँगपगे, भये निशि जागर सखिन मलिनरी ।
शिथिल पलक में उठति गोलक गति, बिध्यो मोहन भृंग सकत
चलिनरी ।

शैया, रास, वन-विहार, स्नान, श्रृंगार, वसन्त-वर्णन, होरी-वर्णन, सभ्रम मान आदि अनेक स्वरूपों में राधा का वर्णन श्री हित जी ने किया है । उनकी सम्मति में राधा के बिना किसी का भी कुछ अस्तित्व नहीं है । राधा और कृष्ण में अभेद की स्थापना करते हुए कवि कहता है :

हित हरिवंश हंस हंसिनी सांवल गौर
कहौ कौन करे जल तरंगिनि न्यारे ।

सर्वत्र राधा व्याप्त है—वही सम्पूर्ण विश्वमण्डल को अनुप्राणित करती है । सर्वशक्तिमती राधा के चरित्र में ईर्ष्या का अंकन करते हुए कवि ने स्वाभाविकता का समावेश किया है । माधव के वक्षःस्थल

पर लटकती कौस्तुभमणि में अपना बिंब देख कर ही राधा को पर-नारी का भ्रम हो गया और वह मान कर बैठी। किन्तु शीघ्र ही मान-विमोचन होने पर वह सरला कृष्ण के आलिंगन में आबद्ध हो गई। मनोवैज्ञानिक पदों के अन्तर्गत उनके वे पद आते हैं जिनमें शरीर की अवस्था का वर्णन करते हुए मनोदशाओं की ओर सतत संकेत द्रष्टव्य है :

मोहन लाल के रस माती !
वधू गुपति गोपत कल मोसों प्रथम नेह सकुचाती ॥
देखि सँभार पीत पट ऊपर कहाँ चूनरी राती ।
टूटी लर लटकत मोतिन की नख बिधु अंकित छाती ॥

इस प्रकार अनिर्वचनीय सौन्दर्य का वर्णन स्थूल से सूक्ष्म की ओर किया गया है। अर्थात् वर्णन में भावोद्‌बोधन की क्षमता है, वह बाह्य सौन्दर्य का परिगणन बन कर ही नहीं रह गया।

राधा की भक्ति के जिस भास्वर रूप को श्री हित जी ने अपनाया है, उसमें कर्मकांड की जटिलता के दर्शन नहीं होते। सब प्रकार के बाह्याडम्बर की पूर्ण अवहेलना परिलक्षित होती है। प्रेम की मसृणता के साथ भाषा का मार्दव भी नयनाभिराम हो उठा है।

यद्यपि राधा-कृष्ण का रूप उनके काव्य में सूर के चित्रण के बहुत समीप है, किन्तु फिर भी उनकी भक्ति सख्य नहीं, दास्य भी नहीं, कान्ता है। उन्होंने न तो यशोदा बन कर उन्हें पालने में झुलाया, न स्वयं सहचर बनकर क्रीड़ा की, और न हास्य और व्यंग्य के पुट देकर ही गोपियों के उलाहने दिये। राधा-कृष्ण का परस्पर सखा-भाव भले ही रहा हो, किन्तु भक्त की स्थिति इन दोनों से इतर, कुंज-रंध्रों में से झाँकने वाली सखी की है, जिसका चरम लक्ष्य 'खवासी' करना है। अतः भक्त दास्य-भाव से ही राधा-कृष्ण का स्मरण करता है, किन्तु उसकी केलि के माधुर्य में रम जाने का अधिकार उसे तभी हो सकता है जब कान्ता-भाव को अपनाया गया हो। अतः श्री हित जी ने कान्ता भाव की ही स्थापना की। राधा और माधव चिर-मिलन की स्थिति में रहते हैं। उनके लिए क्षण-भर का वियोग भी असम्भव

है। फिर भी उनके प्रेम में परकीया भाव की-सी उत्कंठा प्रतिक्षण विद्यमान रहती है। यही हित जी के काव्य की विलक्षणता है।

हितचौरासी इस सम्प्रदाय का मूलाधार है। राधा के विविध रूपों का सुन्दर मन्थन इस पुस्तक में विद्यमान है।'स्फुट वाणी' में मुक्तक पदों का संग्रह है किन्तु इसमें चित्रों का इतना वैविध्य नहीं है, जितना हित-चौरासी में।

यह मधुर भाव से आप्लावित है। इसे शृंगार अथवा उज्ज्वल रस भी कह सकते हैं। इसके दो भेद माने गए हैं: (१) रूढ़, (२) अधिरूढ़। गोपियाँ रूढ़भाव से अनुरक्त होकर अधिरूढ़ भाव का अधिष्ठापन करती हैं। अधिरूढ़ के दो भेद हैं: (१) मदन (संयोग), (२) मोहन (वियोग)। मुख्य रूप से मदन भाव का ही प्रतिपादन किया गया है। इस सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण के प्रेम की विलक्षणता यही है कि कृष्ण राधा के लिए विह्वल रहते हैं। राधा के प्रति पूज्य बुद्धि की प्रतिष्ठापना करने का श्रेय मुख्य रूप से इसी सम्प्रदाय को है।

इस मत के अनुयायी के सम्मुख मुक्ति की कुछ महत्ता ही नहीं है। वह राधा से प्रेम करने के लिए उत्सुक है, शेष किसी वस्तु की उसे वाञ्छा ही नहीं। राधा-सुधानिधि में श्री हित जी ने यही सिद्ध किया है।

राधा की कृपा से ही कोई जीव सहचरी का रूप धारण करता है। मिलन-कुंज में प्रवेश करने से पूर्व उनकी रूप-मोहिनी का वर्णन श्री हित जी ने इस प्रकार किया है:

आजु नीकी बनी राधिका नागरी !
ब्रज जुवति जूथ में रूप अरु चतुराई,
सील सिंगार गुन सबनि में आगरी।
कमल दच्छिन भुजा बाम भुज अंसु सखि,
गावती सरल मिलि मधुर सुर राग री।
सकल विद्या विदित, रहसि हरिबंस हित,
मिलत नव कुंज वर स्याम बड़भाग री !

श्री सेवक जी (दामोदर दास)

श्री सेवक जी की रचना 'सेवकवाणी' नाम से विख्यात है । आलोचकों ने इसे 'हितचौरासी' की पूरक रचना माना है । इन्होंने श्री जी को अवतार-रूप में माना है और उन्हीं की आराधना में तन्मय रहने का उपदेश दिया है :

देखे जु मैं अवतार भजि तहाँ तहाँ मन तैसो न जाई ।
गोकुलनाथ महाव्रज वैभव लीला अनेक न चित्त हटाई ।
एकहि रीति प्रतीति बँध्यौ मन मोहीं सबै हरिवंश बजाई ।
जो हरिबंश तजि भजै औरहि तौ मोहि श्री हरिबंश दुहाई ।।

इन्होंने राधा की महत्ता प्रदर्शित करते हुए कहा कि उसकी आराधना के अभाव में श्री हित जी का स्मरण पूर्ण रूप से व्यर्थ है । राधावल्लभ-संप्रदाय की पद्धति के अनुसार नित्य-लीला, निकुंज-लीला, केलि आदि के वर्णन इन्होंने भी किये किन्तु इनका काव्यगत वैशिष्ट्य यह है कि कहीं वासना का लेश भी नहीं । ये सभी वर्णन भावनापरक हैं :

श्री वृन्दावन नव नव कुञ्ज, श्री हरिवंश प्रेम रस पुंज ।
श्री हरिवंश करत नित केली, छिन छिन प्रति नव-नव रसझेली ।
कबहुँक निर्मित तरल हिंडोल, झूलत झूलत करत कलोल ।
कबहुँक नवदल सेज रचावहिं श्री हरिवंश सुरत नहिं गावहिं ।।

नित्य मिलन होने पर भी कृतियों में विरह की विह्वलता है । क्षण-भर के लिए विलग होने पर ही दोनों का हृदय तड़प उठता है, तथा विरह की उद्दाम वेदना जागरूक होकर प्रेम को परिपुष्ट कर देती है । इन दोनों विपरीत भावों का समावेश बहुत ही सुन्दर शैली में सेवक जी कर पाए हैं :

श्री हरिवंश सुरीति सुनाऊँ, स्यामा स्याम एक सँग गाऊँ ।
छिन इक कबहुँ न अन्तर होई, प्राणसु एक देह द्वै होई ।
राधा संग बिना नहिं स्याम, स्याम बिना नहीं राधा नाम ।।

---

१. सेवक-वाणी—पद ३ और ६ ।

छिन-छिन प्रीति अराधत रहहीं राधा नाम स्याम तब कहहीं।
ललितादिकनि संग सचु पावै श्री हरिवंश सुरत रति गावै ।।

कवि के अधिकांश पदों में सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन ही मिलता है। श्री सेवक जी घोर शृंगारकिता के अंश तो बड़ी चतुराई से बचा गये हैं। कहीं उनकी वाणी में स्थूलता दृष्टिगत होती भी है तो वह केवल हितचौरासी के कतिपय पदों में। उनके वर्णन भावनापरक हैं; भावों को ही उन्होंने अधिक महत्व प्रदान किया है :

'हरषत हित नित नवल रस बरसत जुगल किसोर।'

यह पद इसका द्योतक है कि कवि ने अमांसल सात्त्विक विचार-धारा का प्रतिपादन किया है।

श्री हरिव्यास जी

श्री व्यास जी की कविता युगल रस की माधुरी से सिक्त भक्त-हृदय का मधुमय उद्गार है। इनका जन्म राधा-माधव-भक्ति के यौवन काल में हुआ था। इनकी वाणी ने प्रेम के गीत गाए और इनकी आत्मा उन्हीं में रम गई। अपने समय में ही इन्होंने यथेष्ट प्रसिद्धि का वहन किया, 'भक्तमाल-नामावली' में उल्लिखित पद से ऐसा जान पड़ता है :

वर किशोर दोऊ लाड़िले, नवल प्रिया नव पीय।
प्रगट देखियत जगत में, रसिक व्यास के हीय ।।
कहनी करनी करि भयो एक व्यास इहि काल।
लोक बेद तजि के भजे राधा वल्लभ लाल।

—श्री ध्रुवदास जी

इनकी उपासना में नित्यदर्शन का माहात्म्य विशेष रूप से स्वीकृत है। निकुंज-लीला अथवा रसोपासना का प्राधान्य रहा। श्री हित जी को इन्होंने विशाखा सखी का अवतार माना तथा नित्य-विहार के वर्णन में श्री हित जी की छाया पूर्ण रूप से इनके काव्य को अपने अंक

में छिपाये-सी जान पड़ती है। श्री हित जी के भाव उनके काव्य में सतत मुखरित दृष्टिगत होते हैं। श्री व्यास जी के जीवन से अनेक चमत्कारी घटनाओं का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। कहा जाता है कि एक बार ये श्रीकृष्ण की प्रतिमा की पगड़ी बाँध रहे थे, किन्तु वह बार-बार फिसल जाती थी। तभी ये किसी कार्यवश बाहर गये, जब लौटे तो देखा कि कृष्ण की पगड़ी सुचारु रूप से बँधी हुई है।

इनके अनेक दोहे, साखी और कवित्त साहित्य में बिखरे मिलते हैं। ब्रज-भाषा में 'व्यासवाणी' नामक एक पुस्तक भी मिलती है। अपने सम्प्रदाय के परम्परागत मधुर रस का ही इन्होंने प्रतिपादन किया। श्रृंगार रस का सार राधारानी का नित्य-विहार है। लीला का ध्येय राधा, कृष्ण, वृन्दावन और सहचरी इन चारों को एक सूत्र में बाँधना है। श्रृंगारमयी पद्धति से राधा का सांगोपांग वर्णन किया है :

सुघर राधिका प्रबीन बिना, वर रास रच्चौ,
श्री श्याम संग वर सुरंग तरनि-तनया तीरे।

इनकी राधिका कुटिल कटाक्ष करने वाली, चपला, रसविभोरा शीलवती और सरला है। श्री व्यासजी ने रीतिकालीन कवियों-जैसी शैली अपनायी है। राधा का रूप वर्णन सूर और हितजी की परिपाटी पर ही किया है :

निरुपम राधा नैन तुम्हारे !
बंक विलास स्याम सित लोहित...।

मुख का वर्णन करते हुए अपनी नवीन उद्भावना का परिचय देते हैं :

चन्द्र बिंब पर बारिज फूले !

चैतन्य मत के परकीया-भाव में जिस चरम असंयम की अभिव्यक्ति है, उसका इनके काव्य में अभाव नहीं है। यद्यपि परकीया-भाव को इन्होंने नहीं माना, किन्तु स्वकीया राधा के नग्न चित्र प्रस्तुत किये हैं। अभिसार, शैया-प्रेम आदि का वर्णन अश्लीलता की परिधि तक

खुलकर किया है :

स्याम काम बस चोली खोलत आवत निसि के भोरे।
डाँडी छाँड़ि करत परिरंभन, चुंबन देत निहोरे।
सैननि बरजति पिछाँहि किसोरी के कुच कोर अकोरे।।

इनकी कृतियों में श्री सेवक जी की सूक्ष्मता का पूर्णाभाव है। दूर की कौड़ी लाकर भले ही कोई इसे सूक्ष्मता की परिधि में खींचले पर कवि का विचार सूक्ष्मता का प्रतिपादन करना रहा है यह कहना कठिन है। इनके विहार का वर्णन करते हुए कहते हैं :

सहज वृन्दावन सहज विहार !
सहज स्याम स्याम दोऊ कामी, उपजत सहज विकार ।
सहज कुंज रस पुंजनि परसत सहज सेज सुख सार।
सहज नैन नैननि में, सहज हंसनि, भ्रूभंग सिंगार ।।

कृष्ण का चित्रण एक मुँह ताकने वाले, पत्नीव्रत-धर्म का पालन करने वाले पति के रूप में किया गया है। कृष्ण का व्यक्तित्व राधा के प्रबल प्रभुत्व से दबा हुआ-सा जान पड़ता है। इनकी रचना पर कबीर, सूर और नन्ददास का बहुत प्रभाव दिखाई पड़ता है। राधा से इतर देवों की पूजा को इन्होंने व्यर्थ बताया है। मान की सूक्ष्म विवेचना में भी इन्हें स्थूलता ने आ घेरा है। यही इनकी सबसे बड़ी पराजय है, अन्यथा कवित्व की दृष्टि से इन्होंने राधा के अनेक मोहक चित्रों का सृजन किया है।

कुछ आलोचकों के अनुसार तो श्री हित जी एवं श्री व्यास जी हरिदास से प्रभावित थे, अतः इनका योगदान उस धर्म को पल्लवित करने मात्र में है।

श्री चतुर्भुज दास

इनकी रचना 'द्वादश कलश' नाम से विख्यात है। यह संग्रह बारह 'कलशों' में विभक्त है। प्रत्येक कलश में भिन्न-भिन्न भावों का प्रतिपादन किया गया है। धर्म, शिक्षा, उपदेश, मोहिनी राधा, अनन्य

भजन आदि अनेक विषयों का विवेचन इस पुस्तिका में मिलता है।
राधा के प्रताप का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है :

जो सुमिरै राधावर नाम,
सब सुख सिंधु अभै निज धाम।

राधा नाम के स्मरण-मात्र से परमधाम की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार सर्प और मणि, सूर्य और धूप विलग नहीं किये जा सकते, उसी प्रकार राधा और कृष्ण भी सदैव इकट्ठे रहते हैं—उन्हें अलग करना असम्भव है। वे नित्य-लीला में रत रहते हैं। सहस्रों वर्षों की तपस्या के पश्चात् भी ब्रह्मा के लिए गोपियों की चरण-रज को पाना असम्भव है। वेदों की सतत स्तुति से प्रसन्न होकर मंगलमय हरि ने उनकी प्रत्येक ऋचा को एक-एक गोपी बनकर लीला में भाग लेने का वरदान दिया। राधा की स्तुति से कृष्ण तथा कृष्ण की स्तुति करने से राधा प्रसन्न होती हैं। राधा की प्राप्ति ज्ञान से नहीं, वरन् प्रेमलक्षणा भक्ति से हो सकती है। राधानुराग के समक्ष मुक्ति भी त्याज्य है।

चतुर्भुजदास-रचित राधा-कृष्ण के लीलाविषयक पदों में न कोई वैचित्र्य है, न उनका कोई वैशिष्ट्य ही। वे पुरातन परिपाटी का प्रतिपादन मात्र हैं—किन्तु 'द्वादश कलश' का महत्त्व इस आध्यात्मिक स्वरूप-विवेचन में ही सिमटा है। इन्होंने अपनी मौलिक उद्भावना से राधा की सखी, गोपियों, के निर्माण की एक कहानी गढ़ डाली— यही इनकी कृति का वैशिष्ट्य है।

श्री ध्रुवदास जी

श्री हित जी के पश्चात् राधावल्लभ-सम्प्रदाय के कवियों में सर्वप्रमुख स्थान श्री ध्रुवदास जी का है। ये श्री हित जी के भाष्यकर्ता और व्याख्याता थे। इनकी बयालीस रचनाएँ 'बयालीस लीला' नाम से विख्यात हैं, यद्यपि कुछेक रचनाएँ तो केवल आठ-दस पदों का संग्रह-मात्र ही हैं।

राधा का सर्वांगीण वर्णन करके इन्होंने उसके चरित्र को एक नवीन दिशा में मोड़ दिया है।

इन्होंने राधावल्लभ-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का गहन-गम्भीर विवेचन किया है। ऐसा स्पष्ट एवं गम्भीर विवेचन सम्भवतः अन्य कोई कवि नहीं कर पाया है। निकुंज-लीला, नित्य-विहार, प्रेम और काम की स्थिति, सखियों का स्थान, युगल ध्यान का महत्त्व आदि कोई भी भाव इनकी लेखनी से अछूता न रहा। प्रेम की विलक्षणता के दर्शन कराते हुए इन्होंने माना कि प्रेम, राधावल्लभ और श्री हित जी में कोई तात्त्विक भेद नहीं; तीनों एक ही तत्त्व के विभिन्न स्वरूप हैं। जब तक हृदय में वासना की स्थिति बनी रहती है तब तक मानव प्रेम-पथ का पथिक नहीं बन सकता। यह मार्ग दुरूह है, कंटकाकीर्ण है, सुखमय भी है और दुःख-मय भी। किन्तु फिर भी उपादेय है :

प्रीति समान न और सुख, दुख हू हेत अपार ।
मिलियौ सुख दुख बहुरिवो, यह कीनौ निरधार ।।

राधा की वेशभषा का वर्णन इन्होंने मनिराम, पद्माकर आदि की शैली पर किया है :

सारी हरी ने हरयौ मन लाल कौ,
मोहिनी सोहिनी के तन सोहै ।
अँगिया लाल सुरंग बनी,
लहि गातहि रंग खसै मन मोहै ।
रूप की रासि सबै गुन आगरि,
या छवि की उपमा कहौ को है ।।

कहीं राधा के तन को रूप-फुलवारी बताया है तो कहीं राधा को 'वन' ठहराया है। श्री ध्रुवदास जी सुकुमारता के अद्वितीय कवि हैं :

जैसी अलबेली बाल तैसे अलबेले लाल ।
दुहुन में उलही सहज गोमा नेह की ।।

निकुंज में राधा की शोभा देखिये :

भाँति भली नवकुंज विराजत राधिका वल्लभलाल बिहारी ।
प्राननि की मनि प्यारी बिहारिनि प्यार सौं प्रीतम लै उर धारी ।
ज्यों छवि चन्द्रिका चन्द के अंक में बाढ़ी महाछवि की उजियारी ।

'मनिश्रृंगार' नामक पुस्तक में कवि ने सुन्दर रूप की योजना की है। उनके अनुसार कृष्ण रूप-छवि-माल में राधा-मणि को पिरो कर अपने हृदय पर धारण करते हैं। शतरंज का रूपक बाँधकर कवि लिखता है :

मन नृप मंत्री चोप सौं रचि कीन्ही रुख चाल।
उरज गयंद तुरंग दृग पाइक अँगुरी लाल ।।
रति नागरि दे अधर रस हेत विलास सँवारि।
आलिंगन चुम्बन मनौ खेलत फेरि सँभारि ।।

ब्रजलीला में सखी कृष्ण को नारी की वेशभूषा में राधा से अभिसार करने के लिए ले जाती है। दानलीला में वंशीधर कृष्ण ने ललिता की प्रेरणा से राधा से प्रार्थना की तथा राधा ने रतिदान दिया। रसिक भक्त ध्रुवदास ने अपने जीवन का सम्पूर्ण राग राधा के विभिन्न चित्र रंजित करने में ही उँड़ेल दिया है।

नेही नागरीदास

इनके दोहों का विभाजन तीन कोटियों में किया जा सकता है : (१) सिद्धान्त दोहावली, (२) पदावली, (३) रस पदावली। इन्होंने अपनी रचनाओं में अनन्य प्रेम पर अधिक जोर दिया है। अनन्य प्रेम के उपासक में प्रतिक्षण उसी प्रेम की चिंता बनी रहती है; शेष सम्पूर्ण संसार उसे फीका जान पड़ता है।

सदा सोच में मन रहे, परी जाय जिय झाँखि।
वह चितवन कछु और है प्रेम जु बीधी आँखि ।।

राधा की श्रेष्ठता स्वीकार करते हुए कृष्ण को इन्होंने भी परम्परागत गौण रूप प्रदान किया। बिना राधा की आराधना किये कृष्ण का नाम लेना व्यर्थ है।

जाकौ नाम सुनत परबस ह्वै स्याम सहित स्यामा उर आवै।

श्री अनन्य अली

श्री अनन्य अली का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य 'चरण प्रताप लीला' का सृजन है। इस पुस्तक का प्रभाव दीर्घकाल तक इसके अनुयायियों पर रहा। मुख्य रूप से केलि-वर्णन को ही इन्होंने स्थान दिया है :

माधुरी कुंजनि में विवि प्रीतम खेल वसंतनि को सरसाई।
सेत सिंगार सुगंध पगे तन मैं न कहू दरसाई।
अवनि भोर धरे कलसा मनि चीर गुलालनि सौं बुरकाई।
श्री हरिवंश कृपा जल ले वन खेल अनन्य अली निरखाई॥

कुंज-लीला से इतर विषय भी अछूते नहीं रह पाए हैं। श्री अनन्य अली ब्रजभाषा के सुष्ठु गद्य के रचयिता थे। इनके गद्य का रूप इतना मनोहारी है कि आज तक ये ब्रजभाषा के गद्य क्षेत्र में उच्च एवं आदरणीय स्थान ग्रहण किये हुए हैं।

श्री कल्याण पुजारी

इन्होंने राधा को कोई नवीन रूप प्रदान नहीं किया। परिपाटी के अनुसार प्रस्तुत विषय पर थोड़ा बहुत वर्णन-मात्र मिलता है :

आजु प्रिया मुख की छवि देखत ह्वै गयो मोहन लाल लटू।
पल में न लगे उत नैन लगे इत देह सँभारत नाहि लटू।
अब हाथ ते छूट गई मुरली अरु आपु ही तें गयौ छुटि पटू।
छाई प्रिया हिय लाय लये कहे फूला कली अली देखि भटू॥

जब तक मन में घर, काम और स्त्री के प्रति राग की वासना शेष रहती है तब तक सब व्यर्थ है। पूजा-पाठ से कोई लाभ नहीं। अनन्य प्रेम की स्थिति पाना ही असम्भव है :

देह तो छुटैगी पर नेह न छुटैगो भाई,
जब तें बजाई हरि बंसी, कछु पढ़िकै।
ज्यों ज्यों उनताननि की सुधि करौ मन माँझ,
त्यों-त्यों कहु कारे सौं बिध गयौ चढ़िकै।

श्री रसिकदास

श्री रसिकदास नाम के पाँच भक्त हुए, दामोदर दास जी के शिष्य, मोरी सखी जी के साथी, वैराग्यपरायण भक्त, चन्द्रसखी की गद्दी पर बैठने वाले—इन चारों के अतिरिक्त धीरीधर के शिष्य रसिकदास जी श्री राधावल्लभ-सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

राधा-माधव की अनेक लीलाओं का इन्होंने सुन्दर वर्णन किया है। इन्होंने अपने ग्रन्थों को लता कहकर पुकारा है। इस प्रकार मनोरथ-लता, आनन्द-लता, सौन्दर्य-लता आदि नामों से २२ पुस्तकों का सृजन किया है। युगल-आराध्य के हास्य और विनोद का वर्णन इन्होंने अतीव सरल शैली में किया है :

छके छकाये छैल ये, छके छबीले रूप।
छिन में छल सौं छजनि पर छाजत पये अनूप॥

वाणी में नवीनता न होने पर भी विषय को पल्लवित करने की शैली इनकी अपनी है।

श्री वृन्दावनदास (चाचा जी)

चाचा जी के काव्य का विशेष महत्त्व है। इनकी मुख्यता का विवेचन तीन दृष्टियों से किया जा सकता है—परिमाण-विपुलता, शैली-वैविध्य और रीतिकालीन काव्य-परिपाटी का सर्वप्रथम विशद प्रतिपादन।

परिमाण-विपुलता की दृष्टि से इन्होंने १५८ ग्रन्थों की रचना की। सम्भव है, अर्वाचीन शोध इसमें कुछ और वृद्धि कर दे।

राधा बचपन से ही उनके काव्य-मंच पर उपस्थित रही है। किशोरा-वस्था के वर्णन में उसकी स्थायी परिणति दृष्टिगत होती है। बाल्यकाल का मनोहारी वर्णन इनकी पुस्तक 'लाड़सागर' में मिलता है। बाल-विनोद में राधा का गुड़ियों के प्रति प्रेम स्पन्दित हो गया। वह माँ से पूछती है कि गुड़ियों की सगाई कैसे होती है? उसके इस अद्‌भुत विनोद के दर्शनों के लिए शिव आदि मुनिगण भी आते हैं। राधा के खेल-खेल

के साथी कृष्ण उसके सौन्दर्य पर ऐसे विमुग्ध हो गए कि माता यशोदा से उन्होंने अपना विवाह राधा से करने का हठ किया। इस प्रकार दोनों की सगाई एवं विवाह हुआ। स्वकीया राधा की रति-क्रीड़ा का आनन्द सखियों ने निकुंज-रंध्रों से झाँक-झाँक कर लिया।

'ब्रज प्रेमानंद सागर' का सृजन 'रामचरितमानस' की शैली पर किया गया है। इसमें युगल आराध्य के जीवन से सम्बद्ध प्रचलित घटनाओं का वर्णन मात्र है, कोई नवीन उद्भावना दृष्टिगत नहीं होती। स्वकीया एवं परकीया दोनों रूपों का विवेचन इस ग्रन्थ में प्राप्त है। पाठकों के मन पर आनन्द एवं उल्लास की छाया अवश्य रह जाती है किन्तु उनके काव्य में भावों की गहनता एवं गाम्भीर्य की न्यूनता है।

साहित्य में सूर के बाद इन्हीं का स्थान है जिन्होंने वात्सल्य रस के मनोहारी चित्रों को रंजित किया है:

चुटकी दे दे के दुलरावै, नारायन की कृपा मनावै।

दुलहा दुलहिन के भरे, लाठ रतन या माहिं।
ब्रज प्रेमानंद सिंधु की सीमा की मिति नाहिं॥

राधा का चित्ताकर्षक रूप बरबस ही सबको अपनी ओर खींच लेता है :

गोल गरूर भौंह अस राजे, मधु मुख ससि कर धनुस बिराजे।
दृग बिसाल अंजन जुत लौने भीजत कहू लाज जुत कौने।

'जुगल सनेह पत्रिका' में कवि ने राधा के प्रेम को आराध्य और सबकी शक्ति के बाहर की वस्तु माना है :

यह रस ब्रह्मलोक पाताल अवनिहू दरसत नाहें।
या रस को कमलापुर हूँ के तरसत हैं मन माहें।
यह रस रसेस्वरी-कृपा तें प्रेमी जन अवगाहें।
वृन्दावन हित रूप जगत रहें रस उमाहें।

'रसिक पथ चन्द्रिका' में भक्त अलि-भाव से निकुंज-लीला का रस-पान करता है :

यह रस अनुभव जनित है, मन है गाढ़ी प्रीति।
श्री हरिवंश प्रसाद तें पावै सुलभा रीति।।

राधा-कृष्ण की रति-क्रीड़ा में तत्सुख का आभास पाना ही अलि-भाव है :

गौर श्याम कानन रमें, नित रस लीला कृत्य।
तत्सुख बरनें भाव अलि हित पद भजनाभृत्य।।

'चाचा जी' की सम्मति में गार्हस्थ्य धर्म का परित्याग करना ही भक्ति के लिए श्रेष्ठतम मार्ग है किन्तु उसका त्याग शनैः-शनैः करना उचित है। इस प्रकार राग से वैराग्य की ओर प्रवृत्त होना कष्टसाध्य नहीं होता। किन्तु इनकी महत्ता का प्रतिष्ठापन सबसे अधिक 'रास छन्द विनोद' नामक पुस्तक से हुआ। इसमें राधा-कृष्ण की २७ लीलाओं का वर्णन है। कृष्ण छद्म वेश धारण कर पुनः-पुनः राधा के पास जाते हैं—कभी मालिन, कभी तमोलिन बनकर, किन्तु राधा उन्हें हर बार पहचानने में समर्थ होती है। यह अपनी तरह का एक अनोखा ही ग्रन्थ है।

इन्होंने राधा के वात्सल्य का अपूर्व वर्णन करके उसके गुड़िया से खेलने वाले भोले रूप को भी मुखरता प्रदान की है। इनकी राधा छद्मवेशी कृष्ण को भी पहचान लेती है तथा उसका रहस्यात्मक व्यक्तित्व फिर भी रहस्य की ग्रन्थि ही बना रहता है। बस यही है इनकी रचना की विशिष्टता, अन्यथा इन्होंने कोई नवीन मोड़ उसके चरित्र को प्रदान नहीं किया।

राधा का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत करने में ही इनका महत्त्व है। ये माँ बनकर राधा को चुटकी बजा-बजाकर पालने में झुलाते रहे—कृष्ण बनकर राधा के साथ हास-विलास भी करते रहे तो गोपी बनकर उनकी लीलाओं को निकुंज-रंध्रों से झाँकने से भी नहीं चूके। यही इनके काव्य की महानता है कि ये राधा से सम्बद्ध प्रत्येक आश्रय के भावों में मँडराते रहे हैं।

श्री हठी जी

मनोमुग्धकारी राधा के वर्णन में सरसता की अतिशयता का संचार करने वालों में श्री हठी जी का उच्च स्थान है। श्री हठी जी ने अपनी एकमात्र उपलब्ध पुस्तिका 'श्री राधा सुधा शतक' में किशोरी राधा के ही चित्र प्रस्तुत किये हैं। कहीं-कहीं वह आराध्या के रूप में भी पाठकों के सम्मुख आयी है किन्तु ऐसे स्थलों पर भी कृष्ण का उल्लेख करने से हठी जी नहीं चूके :

श्री वृषभानुकुमारि के पग बन्दौं कर जोर।
जे निसि बासर उर धरें ब्रज बसि नंदकिसोर ॥[1]

ऐसे पद बहुत ही नगण्य हैं जिनमें हठी जी ने राधा को प्रेम से मुक्त आराध्या देवी मानकर पूज्य-भाव की स्थापना की है :

राधा राधा कहत है जे नर आठों जाम।
ते भव सिंधु उलंघि के बसत सदा ब्रज धाम ॥[2]

श्री हठी जी की राधा लावण्य की साक्षात् प्रतिमा हैं :

बैठी रंग भरी हैं रँगीली रंग शबरी में,
कहाँ लौ बखानौं सुन्दराई सिरताज की।
चाँदनी की चंपक की चंचलता चमीकर की,
इंदिमा तिलोत्तमा की शोभा कौन काज की।
मोतिन के हार गले मोहित सो माँग भरे,
प्रीतिन सौं बैन गुहो हठी सुखसाज की।
चाल गजराज मृगराज की सी लंक दुज
राज सौं बदन राजै रानी बृजराज की।[3]

हठी जी ने राधा के रूप-चित्रण की ओर ही विशेष ध्यान दिया है अपितु उनकी कविता में राधा-कृष्ण के संयोग का अधिक वर्णन नहीं

१. श्री राधा सुधा शतक, पृ० १, पद १।
२. वही, पृ० १, पद ५।
३. वही, पृ० ६, पद १८।

मिलता, अतः अश्लीलता का दोष तो इनकी कविता में कहीं दीखता ही नहीं। इन्होंने राधा के विधु से समान सुन्दर मुख की छवि का ही नाना प्रकार से वर्णन किया है। कहीं वह मोतियों के शृंगार में सुन्दरी अप्सरा-सी जान पड़ती है तो कहीं ज्योत्स्ना की श्वेत कांति से रंजिता वह अद्वितीय लावण्य से चमक उठती है। 'पूज्या राधा' की रूप-माधुरी को नाना वर्णों से रंजित करके हठी जी ने पाठकों के सम्मुख रख दिया है। उन्होंने यद्यपि स्वरूप-विकास की दृष्टि से कोई महत्त्वपूर्ण पग नहीं उठाया किन्तु फिर भी लावण्य की प्रतिमा राधा के रूप-चित्रण में हठी जी की तुलना में कोई अन्य कवि नहीं आता। जहाँ कहीं राधा के मान का वर्णन है वहाँ भी 'मान' क्रिया गौण हो जाती है तथा भाव-भंगिमा एवं सज्जा का वर्णन मुखर हो उठता है।

राधावल्लभ-सम्प्रदाय में किशोरी तत्त्व की स्वीकृति है। इस सम्प्रदाय की राधा 'नित्य-किशोरी' है—वह नित्य-रास में रत रहती है। उसका शक्ति एवं लक्ष्मी का रूप उक्त सम्प्रदाय में दबकर रह गया तथा किशोरी तत्त्व ही मुखर हो उठा है। यद्यपि राधा के वात्सल्य से लेकर किशोरावस्था तक के प्रत्येक भाव, संकेत आदि का कवियों ने वर्णन किया है, भक्ति की सभी विधाएँ राधावल्लभीय काव्य में सहज ही उपलब्ध हैं—किन्तु मुख्य रूप से कवियों का मन राधा के किशोरी तत्त्व में ही रमा है।

८

सखी-सम्प्रदाय में राधा

सखी-सम्प्रदाय

वृन्दावन में फला-फूला सखी-सम्प्रदाय तीन नामों से विख्यात है—(१) हरिदासी सम्प्रदाय, (२) टट्टी सम्प्रदाय, (३) सखी सम्प्रदाय। इसके प्रवर्तक श्री हरिदास जी थे अतः सर्वाधिकप्रचलित नाम उन्हीं के अनुसार पड़ा। कितने ही वर्षों तक आलोचकों ने इसे निम्बार्क-सम्प्रदाय की एक शाखा के रूप में ग्रहण किया क्योंकि प्रथमतः स्वामी हरिदास जी स्वयं निम्बार्क-मतानुयायी थे। किन्तु अनेक शोधों ने पचास वर्ष पूर्व इस धारणा की मिथ्या दीवार को खण्डित करते हुए इसे स्वतन्त्र मत की संज्ञा प्रदान की।

उक्त सम्प्रदाय में मुख्य रूप से नौ कवि उल्लेखनीय हैं :

(१) स्वामी हरिदास,(२) विठ्ठल विपुलदेव,(३) बिहारिनदास, (४) नागरीदास, (५)सरसदास, (६)ललित किशोरी, (७)पीताम्बर देव, (८) ललितमोहिनी देव, (९) भगवतरसिक।

उपलब्ध कृतियों में से अभी तक स्वामी हरिदास तथा श्री विट्ठल विपुलदेव के ही ग्रन्थ प्रकाशित रूप में प्राप्त हैं। विषय को दृष्टिगत रखते हुए तीन कवि ही विशेष उल्लेखनीय हैं।

स्वामी हरिदास

भगवत्प्राप्ति के लिए सखी-भाव को एकमात्र साधन मानकर, श्री हरिदास ने स्वतन्त्र मत की प्रतिष्ठा की। इस मत के भक्तों ने वेदान्त के किसी विशिष्ट वाद के प्रचार में अपना समय व्यतीत नहीं किया, वरन् सखी-भाव को ही एकमात्र उचित साधन माना। स्वामी हरिदास ने राधा-कृष्ण की युगलोपासना को ग्रहण किया। वे युगल प्रतिमा

के सम्मुख ही अपनी विचारधारा में डूबे-से—प्रियवर के असीम प्रेम में विभोर—मधुर गायन में निमग्न रहते थे। उनके दुर्लभ दर्शनों के लिए अनेक राजाओं का उत्सुक रहना भी इतिहास में उल्लिखित है। स्वामी जी रचित साहित्य में मत का सैद्धान्तिक पक्ष एवं युगल-विहार दोनों ही विषयों का प्रतिपादन करने वाली कृतियाँ प्राप्त हैं। युगल-विहार का वर्णन उन्होंने 'केलिमाल' में किया है। उनकी राधा विषयक कविता में बाह्य शब्द-सौन्दर्य के दर्शन भले ही न होते हों किन्तु राधा की सुकोमलता एवं कमनीयता सर्वत्र व्याप्त है। संगीतशास्त्र के ज्ञाता होने के कारण उनके सम्पूर्ण पद विभिन्न राग-रागिनियों में आबद्ध हैं। वस्तुतः वे पठनीय वस्तु न रहकर गेय बन गये हैं। उनके काव्य की माधुरी संगीत का आलम्बन लेकर ही मुखर हुई है। युगलाराध्य की युगल माधुरी में सतत निमज्जन करते हुए भी स्वामी जी अघाते न थे—

प्रेम समुद्र रूप रस गहिरे, कैसे लाग घाट।

उनके काव्य में स्निग्ध हृदय तथा भक्ति से पूरित भावुक विलोचन के अद्भुत दर्शन होते हैं :[1]

प्यारीजू जैसे तेरी आँखिन में हों अपनपों।
देखत हौं ऐसे तुम देखत हौं किधौं नाहीं।
हौं तोसों कहौं प्यारे, आँखि मूँदि रहौं,
तो, लाल निकसि कहाँ जाहीं।
मोकौं निकसिबे को ढौर बताओ,
साँची कहौं, बलि जाँव लगौं पाहीं।"
श्री हरिदास के स्वामी श्यामा कुंज बिहारी,
तुम्हें देख्यौ चाहत और सुख लागत काहीं।[2]

राधा-कृष्ण की एकरूपता का वर्णन कवि ने कितने सुन्दर शब्दों में किया है। युगल देव की केलि का शब्द-चित्र अंकित करने में कवि ने जैसे अपनी प्रतिभा को सुन्दरतम वर्णों को उंडेल डाला है :

---

१. भागवत सम्प्रदाय—बलदेव उपाध्याय, पृ० ३५७।

२. केलिमाल, पृ० ७, पद-सं० ६।

आजु त्रनु टूटत है री ललित त्रिभंगी पर ।
चरन चरन पर, मुरली अधर धरैं, चितवनि बंक छबीली भ्रू पर ।
चलहु न वेगि राधिका पीय पै, जो भयौ चाहति हौ सर्वोपर ।
श्री हरिदास के स्वामी को समयो, अब नीकौ वन्यौ ।
हिलमिल केलि अटल भई रति धू पर ।[1]

नित्य-विहार उनकी उपासना का मूल है। उपास्यदेव नित्य-विहारी हैं—अवतारी हैं। राधा गोपिकाओं एवं सखियों की उपास्यदेवी तो हैं ही, श्रीकृष्ण भी उनकी उपासना करते हैं। यहाँ पर आकर राधा कृष्ण से विशिष्ट हो गई। राधा को यद्यपि उन्होंने स्वकीया रूप में ही चित्रित किया है, किन्तु फिर भी युगलदेव में प्रेमोत्कंठा का प्राबल्य विलक्षणता है। श्रीकृष्ण एक-नारीवल्लभ हैं—शेष सखियाँ उपासिकाओं के घेरे तक ही सीमित रही हैं। युगल केलि का स्थान, स्वामीजी ने दिव्य वृन्दावन को माना है।[2] श्री हरिदास जी ने दिव्य कल्पना पर आधारित सूक्ष्म वृन्दावन को अपनाया है।

साधना-भवन के चार स्तम्भ हैं—प्रिया, प्रियतम, सखी और वृन्दावन। सखी-सम्प्रदाय में इन सभी का स्वरूप नित्य किशोर एवं चिर-स्थायी माना गया है। इस प्रकार एक ओर जहाँ इनकी राधा बचपन की नासमझी से ऊपर उठकर शृंगार की उपयुक्त भूमि पर आसीन है वहाँ दूसरी ओर सलज्ज किशोरावस्था के आँचल से आप्लावित होते हुए यौवन की विलासी फिसलन तक भी नहीं पहुँच पायी। राधा-कृष्ण दोनों किशोर और किशोरी प्रेमोत्कंठा से परिपूर्ण हृदय लिये क्रीड़ा में रत हैं किन्तु उनका प्रेम शुद्ध, मुक्त है।

वृन्दावन के निकुंज-विलास को नयी दिशा देने में हरिदासजी का विशेष महत्त्व है। श्री भट्ट ने परम्परागत रूप को स्वीकार किया था किन्तु स्वामी हरिदास जी ने नित्य स्वकीया को ही माना :

---

१. केलिमाल, पृ० १०, पद सं० १८।

२. वृन्दावन के दो रूप माने जाते हैं, एक आभ्यन्तर और दूसरा बाह्य। आभ्यन्तर वृन्दावन दिव्य कल्पना पर आधारित है तथा बाह्य वृन्दावन स्थूल भौतिक है।

प्यारीजू ! जब जब देखौं तेरौ मुख, तब नयौ-नयौ लागत !
ऐसौ भ्रम होत मैं कबहूँ देखी न री, दुतिकौं दुति लेख न कागति।
काम की शांति न होई न होई न त्रपित रहौं निसि दिन जागति ॥[1]

घोर अतृप्ति की दशा का वर्णन है। कृष्ण जितनी बार स्वकीया राधा के दर्शन करते हैं उतनी ही बार उन्हें सौन्दर्य की कोई नयी आभा दृष्टिगत होती है। "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया:।" प्रति क्षण जैसे सौन्दर्य में नवीनता का समावेश होता जाता है और यहीं आकर जैसे भक्त की लेखनी अवरुद्ध हो जाती है और वह समझ नहीं पाता कि प्रतिक्षण परिवर्तनशील सौन्दर्य का अंकन कागज़ और लेखनी किस प्रकार कर सकते हैं।

निम्बार्क-सम्प्रदाय तथा हरिदासी-सम्प्रदाय का अन्तर स्पष्ट करते हुए एक भेद विशेष रूप से मुखर हो उठता है। निम्बार्क-सम्प्रदाय में ब्रजलीला तथा निकुंज-लीला में कोई तात्त्विक भेद न मानते हुए सम्यक् रूप से गोपिकाओं की लीला का गान किया गया है, किन्तु इसके विपरीत स्वामी हरिदास ने स्थूल ब्रज-विहार, परकीयात्व, विरह एवं अवतारवाद का त्याग करते हुए सखी-भावनात्मक उपासना को अपनाया है।

श्री विट्ठल विपुल देव

इनकी विलक्षणता इसी में है कि स्वयं वैरागी होते हुए भी इन्होंने भक्ति में वैराग्य की सर्वत्र उपेक्षा की है। विहारिन देव के शब्दों में—'वैरागी भटकत फिरें लिये बैर अरु आग', अत: एक प्रेमी का स्थान इससे बहुत ऊँचा है। उसे किसी से द्वेष नहीं—सभी के लिए राग है—सबसे स्नेह है। इसी प्रेम की उत्पीड़ा में वह कुन्दन बनकर चमक उठता है।

श्री भगवतरसिक जी

इनकी रचनाओं में वैराग्य एवं अनन्त प्रेम का अद्भुत समन्वय दर्शनीय है। एक ओर वैराग्य की शान्ति है तो दूसरी ओर अपूर्व प्रेम झलक उठता है। इनकी पाँच रचनाएँ बताई जाती हैं :

---

१. केलिमाल, पृष्ठ १५, पद-संख्या ३४।

(१) अनन्यनिश्चयात्मक, (२) श्री नित्य-विहारी-युगल-ध्यान, (३) अनन्य रसिकाभरण, (४) निश्चयात्मक ग्रन्थ उत्तरार्ध, (५) निर्बोध-मनरंजन।

श्री भगवतरसिक ने राधा और कृष्ण को नित्य-किशोर माना है। राधा की नित्य-परिचर्या एवं सान्निध्य का अंकन ही इनका एक-मात्र लक्ष्य है किन्तु उसके सशरीर दर्शन को हेय माना है। सूक्ष्म विचार-विनिर्मिता राधा ही आराध्या है। श्री भगवतरसिक तो वृन्दावन में युगलमूर्ति की अभिराम छवि को आँखों में सँजो लेने के पोषक हैं :

प्यारी जी जैसे तिहारी आँखन में आन को देखत वैसे।
प्यारे लाल आँख मूँदि रहौ तो लाल निकस कहाँ जाई ॥

अनुभूतियों की तन्मयता के यथार्थ चित्र हमें इनके पदों में मिलते हैं। शब्दों में असीम माधुर्य फूँककर इन्होंने अपने काव्य का महत्त्व द्विगुणित कर दिया है। किन्तु राधा के स्वरूप को कोई नवीन दिशा प्रदान करने में इनका विशेष योग नहीं रहा। परम्परागत रूप को ही इन्होंने अपनी रचनाओं में स्थान दिया है।

हरिदासी-सम्प्रदाय की प्रेम-साधना एकान्तिक है। वह अपने भक्त को जागतिक द्वन्द्व और कर्तव्यगत संघर्ष से हटाकर भगवान् के अनन्य-गामी प्रेम की शरण में ले जाती है। भौतिक जीवन से इसका निरन्तर असहयोग रहा है।[1] आत्म-समर्पण का वेग स्त्री-रूप में ही सबसे अधिक अभिव्यक्त होता है। इसी से इस मत में सखी-भाव को प्रधानता दी गई है। सखी-सम्प्रदाय अपने समय के अत्यन्त शक्तिशाली सम्प्रदायों में से सिद्ध हुआ। इसी से रामभक्ति-शाखा पर भी इस भावना का प्रभाव पड़ा तथा वृन्दावन की भाँति अयोध्या भी सखी-सम्प्रदाय का केन्द्र बन गई है किन्तु शीघ्र ही इसने ह्रास की ओर पग बढ़ाया। भक्तों ने स्त्री-भाव को ही ग्रहण न किया अपितु स्त्रियों की वेशभूषा तथा हाव-भाव का अनुकरण भी आरम्भ कर दिया। अतः शीघ्र ही आंतरिक प्रेम-प्रदर्शन की शक्ति क्षीण हो गई।[2]

---

१. हिन्दी साहित्य : हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २१२-१३।

२. वही ,, ,, ,,

राधा नित्य-नारी है, कृष्ण नित्य-पुरुष है। इनमें कौन प्रधान है कौन अप्रधान, इसका प्रश्न ही नहीं रहता। वे दोनों एक-दूसरे के सखा हैं तथा उनके भक्त-गण भी सखी-भाव में ही उनकी आराधना करते हैं।)

९

राधा के विकास में कवयित्रियों का योगदान

वास्तव में इस प्रेमातिरंजित साहित्य की भूमिका को कवयित्रियाँ कवियों की अपेक्षा कहीं अधिक साफल्य के साथ निभा पातीं हैं, क्योंकि कोमल भावनाएँ एवं कलात्मक अभिव्यक्ति नारी के जन्मजात गुण हैं—अतः वे काव्य के अधिक निकट आती हैं। किन्तु कवयित्रियों की रचनाओं में राधा का अधिक चित्रण नहीं मिलता। सम्भवतः कारण यही रहा हो कि कृष्ण के प्रति प्रणय-निवेदन तथा आत्मोत्सर्ग करने के लिए उन्हें किसी नारी-माध्यम की आवश्यकता नहीं थी।

यहाँ आकर हिन्दी और बंगला के वैष्णव साहित्य में एक पार्थक्य उत्पन्न हो जाता है। बंगाल के सभी वैष्णव कवियों ने दूर से ही राधा-कृष्ण केलि का आस्वाद किया है। राधा के भावों से आत्मसात् की चेष्टा किसी ने भी नहीं की।

मीराबाई

मीरा की अनुभूतिमूलक प्रेम-साधना का विकास किसी सम्प्रदाय-में हुआ था कि नहीं, यह कहना कठिन है। यद्यपि तत्कालीन साहित्य-सामग्री के आधार पर इस विषय में कोई संदेह शेष नहीं रह जाता कि उन्होंने वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षा नहीं ली, फिर भी उनके काव्य में अष्टछाप के पुष्टिमार्गीय कवियों की विचारधारा की स्पष्ट छाया विद्यमान है।

स्वयं विरहिणी बन कर उन्होंने किशोर कृष्ण की स्मृति में अश्रु ढुलकाये हैं, इसी कारण से उनको राधा के माध्यम की विशेष आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। फिर भी राधा को कृष्ण के साथ आसीन

करने की परम्परा ने उनके पदों को अछूता नहीं रहने दिया। राधा कृष्ण नित्य-लीला में रत हैं:—

माई री, मैंने गोविन्द लीनौ मोल !
कोई कहै सस्तौ, कई कहै महँगौ, लीनौ तराजू तोल ।।
कोई कहै घर में, कोई कहै बन में, राधा के संग किलोल ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, आवत प्रेम के मोल ।।[1]

तब क्या कोई यह मानने में संदेह करेगा कि राधा को मीरा ने यहाँ ब्रह्म की आह्लादिनी शक्ति माना है। वे नित्य रास में रत हैं। राधा और कृष्ण का सम्बन्ध शक्ति और शक्तिमान-जैसा है।

'हमारे मन राधा स्याम बसी।'[2] कह कर मीरा उन दोनों की अभिन्नता को प्रकट करती है। लीला के हेतु भिन्न शरीर धारण करते हुए भी राधा और कृष्ण मूल रूप में एक-दूसरे से अभिन्न ही हैं। यद्यपि राधा की भावना को मीरा ने बहुत ही गौण रूप से अपनाया है फिर भी—'झूलत राधा सँग गिरधारी' आदि पदों में जहाँ कहीं राधा का उल्लेख मिलता है— स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है कि मीरा राधा को कृष्ण की शक्ति ही मान कर चली हैं।

स्वयं नारी होने के कारण उन्हें राधा को माध्यम बनाना इष्ट भी नहीं था—यद्यपि वल्लभ-सम्प्रदाय के मात्र माधुर्य पक्ष को ग्रहण करने के कारण इनके पास राधा के चरित्र-चित्रण के लिए विस्तृत पटल भी था, फिर भी इस विषय को उन्होंने नहीं अपनाया। स्वयं ब्रह्म से सीधा नाता जोड़ने की भावना के कारण उनके पदों में साहित्यिक दृष्टि से राधा के दर्शन नहीं होते। इसी से उनकी कविता में राधा के प्रति न तो अनुभूति की गहनता ही है और न तीव्रता ही। विचारों का वैविध्य भी नहीं जान पड़ता। वल्लभ-सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण ही कहीं-कहीं राधा का उल्लेख हो गया है। उन स्थानों पर भी वह दार्शनिकता की सीमा से आगे नहीं बढ़ पाया है।

---

१. मीरा बृहत् संग्रह—संपादिका : पद्मावती शबनम, पृ० १४६।
२. वही, पृ० १५५।

चन्द्र सखी

इनके पदों में अनुभूति की तीव्रता है। मीरा की भाँति ही इन्होंने कृष्ण से सीधा नाता जोड़ा है। यत्र-तत्र राधा के उल्लेख इनकी रचनाओं में अपेक्षाकृत अधिक मिल जाते हैं। क्योंकि इन्हें कृष्ण की प्रत्येक वस्तु से प्रेम था—बंसी, राधा, लकुटिया—सभी इनके लिए आनन्ददायिनी थीं। पदों को पढ़ कर जान पड़ता है कि इन्होंने राधा का उल्लेख, कविता में माधुर्य का परिपाक करने के लिए ही किया है। इनकी राधा कृष्ण के साथ झूला झूलती एवं होली खेलती ही दीख पड़ती है। सम्भव है कि वे जीव को राधा का प्रतीक मानकर चली हों, पर कविता में कहीं न तो यह भावना स्पष्ट हो पाई है और न ऐसा कोई संकेत ही दिखाई पड़ता है। इनकी राधा विरहिणी नहीं है अपितु सदैव कृष्ण का रूप-पान करने में रत रहती है। जहाँ-कहीं कृष्ण का कुब्जा के पास चले जाने का वर्णन है वहाँ काव्य में राधा के विरहाश्रुओं से सजलता नहीं दिखाई देती। गोपियों की विरह-व्यथा का जहाँ वर्णन है वहाँ राधा का उल्लेख नहीं मिलता—

कब को गयौ म्हारी सुधि न लई,
चाँदनी सी रात म्हारी बैरिन भई।[1]

भजनकुँवरि

भ्रमरगीत-परम्परा में इन्होंने एक नवीन उद्‌भावना का समावेश किया है। भ्रमरगीत में जहाँ गोपियों ने उद्धव को मधुप की उपाधि प्रदान की है—वहाँ इनके पदों में श्री कृष्ण ही उद्धव को भ्रमर के नाम से सम्बोधित कर अपना संदेश भेजते हैं, राधा के प्रति अपनी 'अरज' भेजते हैं—

मधुप, तुम बोलो तो भाई!

◇ ◇ ◇

कहो जाइ सकल गोपिन से दोइ कर जोर इहो।
राधा से विनतो बहु कहिये मेरी अरज कहीं॥[2]

---

१. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ—डॉ० सावित्री सिन्हा, पृष्ठ २०८।

इनकी कविता में राधा एक ठोस मानिनी है, जिसे मनाने के लिए कृष्ण 'मधुप' के द्वारा नाना प्रकार की अनुनय-विनय करने का यत्न करते हैं। भजन कुँवरि की राधा, कृष्ण से ऊपर उठ गई हैं। इनकी कविता में राधावल्लभीय भावनाओं का पुट अधिक है।

रानी बख़्तकुँवरि (प्रिया सखी)

प्रिया सखी ने राधा-कृष्ण की दाम्पत्य लीला के मादक चित्र अंकित किये हैं :

रंग महल में राधावल्लभ रूप परस्पर झूल।
रूप परस्पर झेलत होरी खेलत खेल नवेलें ॥[1]

सुन्दरकुँवरि बाई

राधावल्लभ-सम्प्रदाय के साधु जिस किसी अवस्था की मात्र कल्पना कर सकते थे, वह उनकी स्वानुभूति थी—अतः उनकी कविता में प्रेमाभिव्यक्ति की तीव्रता दृष्टिगत होती है। इनके काव्य में राधा-कृष्ण की लीला का सुन्दर वर्णन है। एक बार कृष्ण गर्व से कहते हैं :

ग्वारि ग्वारिनि तुम सबै समुझत नहिं कछु भूर।
चौदह विद्या हम महहिं, चौदह कला सपूर ॥[2]

तब मानिनी राधा अपना मौन भंग करके कहती हैं :

चौदह विद्या तुम नहीं, सोलह कला बसाय।
तो गुन प्रकट दिखाय कछु, लीजै दान रिझाय ॥[3]

राधा की इस बात पर कृष्ण लीला रचते हैं, जिसे देखकर राधा चित्रलिखित-सी विस्मित भी रह जाती है :

चित्र सी लिखी सी राधे विवश छकी सी रही,
आँखिन की पाखै बाँधी ता खिन बिहारी जी।[4]

१, २, ३, ४, मध्यकालीन हिन्दी-कवयित्रियाँ—पृ० १७२, पृ० १८०।

१०

रीतिकाल में राधा

रीति-काल

शुक्ल जी ने १७०० से १९०० तक की दो शताब्दियों को 'रीति-काल' की संज्ञा प्रदान की है। भक्तिकाल की धार्मिक चिन्तन-धारा रीतिकाल की भूमि तक पहुँचते-पहुँचते अत्यन्त क्षीणकाय रह गई थी। यद्यपि कुछ समय के लिए रीतिकालीन काव्य अत्यन्त लोकप्रिय रहा, किन्तु शीघ्र ही आलोचकों में इसके प्रति विरक्ति की भावना दृष्टिगत होने लगी। भक्तिकाल के जन-नायकों ने जन-समाज में नवस्फूर्ति का संचार किया था। किन्तु तुलसी के आराध्य उसके स्वामी थे, अतः सीता के शृंगार में एक प्रकार का गोपन था, मर्यादा थी, संकोच था, जिसने सीता और राम के व्यक्तित्व की महानता का प्रदर्शन किया। उनकी असीम पावनता का स्पर्श करने में दास तुलसी झिझकते थे। किन्तु सूर कृष्ण के सखा थे। उन्हें अपने मित्र की गोपनीय-से-गोपनीय बात कहते भी संकोच नहीं हुआ। फिर भी वह ऐकांतिक उपासना शुद्ध भक्ति थी। शनैः-शनैः भक्ति का शृंगारपरक रूप ही प्रबल हो उठा और फिर संयम जन्य स्वस्थ रूप का अभाव लिये रीतिकाल ने साहित्य में झाँका।

भक्तिकाल के साहित्य में भक्ति-भावना इतनी प्रबल थी कि सभी प्रकार की लौकिक एवं अलौकिक रचनाओं को इसने अनुप्राणित किया। उनकी रचनाओं में भक्ति से विह्वल प्रेमी प्राणों का शुद्ध संगीत था—परम परमेश्वर के प्रति आत्म-निवेदन की भावना थी।

बारहमासा और षड्ऋतु-वर्णन के बहाने उन्होंने अपने हृदय की समस्त वेदना उँडेलकर रख दी और इस प्रकार भगवान् के साथ मानव-जीवन के सबसे सुकुमार 'रस' का सम्बन्ध जोड़ लिया। कृष्ण-भक्त

कवियों ने तो भगवान् के लीलामय रूप को ही अपने काव्य का प्रधान विषय बनाया।[1]

रीतिकाल की परिधि में प्रवेश करने वाले इस कृष्ण-प्रेम के साहित्य से भक्तियुग में क्षीण रूप से जीवित रहने वाली, लौकिक रस की काव्य-धारा को सहारा मिला। भक्ति के पुनीत आदर्शों की इतिश्री होने के साथ-साथ विलासिता का वर्ण गहरा होता गया। न अध्यात्म का आरोप रहा, न वासना का उन्नयन ही। शरीर की प्रधानता होने के कारण प्रेम का स्थान रसिकता ने ले लिया। कुल-शील की मर्यादा किसी भी रूप में विद्यमान न रही। राधा-कृष्ण की आड़ में घोर विला-सिता की होली खेलने वाले कवियों की आँखें रूप में ऐन्द्रियिक आनन्द का उत्सव मनाने लगीं। इन कवियों ने अश्लील-से-अश्लील वर्णनों का आलम्बन भी राधा-कृष्ण को इसलिए बनाया कि उनके काव्य का नैतिक दृष्टि से तिरस्कार न हो :

आगे के सुकवि रीझि हैं तो कविताई,
न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है॥

राधा और कृष्ण उपास्य न रहकर लौकिक नायक और नायिका बन बैठे। गोपियों के प्रति भी कवियों की कोई पूज्य बुद्धि न रही। पद्मसिंह शर्मा के अनुसार तो नारी के प्रति इनका दृष्टिकोण इतना हेय था—मानो कि वे गुलाबजामुन हैं—एक हलवाई की गुलाब-जामुन चखी—फीकी निकली तो उठा फेंकी और दूसरी खरीद लाए। कुछ ऐसा ही विकृत स्वरूप उस युग की नारी को प्राप्त था। राधा आह्लादिनी एवं शक्ति के स्वरूप को खोकर सामान्य नायिका बन गई।

नारी के सखी, भगिनी और मातृरूप का तो इस साहित्य में पूर्णाभाव ही रहा। नारी का विलासी एकांगी रूप ही प्रस्तुत किया गया, वह भी विलास की सीमाओं का व्यतिक्रमण कर शुद्ध प्रेम के घेरे में नहीं पहुँच पाया। राधा कृष्ण की सहभोक्ता न रही—राधा-विषयक काव्य में आत्माभिमान, खंडिता, मान-दशा, वाग्वैदग्ध्य के चातुर्य अथवा रति-विलास के चित्रण से इतर कुछ भी शेष न रहा।

---

१. हिन्दी साहित्य—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २६०।

रीतियुगीन काव्य में रोमानी साहसिकता का भी प्राय: अभाव मिलता है। परकीया की प्राप्ति भी यहाँ दूती-दासी आदि की सहायता से सर्वथा घरेलू रीति से ही होती है। जहाँ एक ओर आध्यात्मिक आदर्शवादिता की शून्यता हो गई वहाँ दूसरी ओर बलिदान तथा साहस की भावनाओं को ढूँढ़ निकालना भी असम्भव है। राधा के प्रति नितान्त सामंतीय दृष्टिकोण हो गया है। सक्रिय आकर्षण के स्थान पर उपभोग्य वस्तु के प्रति निष्क्रिय आकर्षण अधिक मिलता है।[1]

राधा और कृष्ण का नाम लेकर साहित्य-सृजन करने के सम्भवत: दो कारण थे। प्रथम तो यह कि शृंगार-रसात्मक काव्य को प्रोत्साहित करने का बहुत-कुछ श्रेय राधा-कृष्ण के भक्तिकालीन प्रेम-काव्य को था। दूसरा यह कि इन कवियों के विकास-जर्जर मन में नैतिक बल की इतनी शून्यता थी कि वे लोग भक्ति के प्रति अनास्था प्रकट करने से भी घबराते थे।

राधा, कृष्ण एवं गोपिकाओं के स्थूल शृंगार का फलक शरीर की विभिन्न चेष्टाओं तक ही सीमित था। इतने बृहत् साहित्य की रचना के लिए अत्यन्त सीमित क्षेत्र में सुप्रतिभ कवियों ने नवीन उद्भावनाओं का समावेश किया। गोपियों की अवस्था और गुण के अनुसार वर्णन करते हुए कवियों ने अपनी कृतियों में नायिका-भेद को प्रचुर स्थान प्रदान किया। राधा भी इस आवर्त से बाहर न रह पायी। विभिन्न स्थितियों में पड़ी राधा की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं पर उन्होंने नाना प्रकार के नायिका-भेदों का आरोप किया। **अवस्था-क्रम** से स्वकीया के—मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा—तीन भेद किये तथा **स्वभाव** के अनुसार उत्तमा, मध्यमा और अधमा।

निरीह राधा को इन सभी प्रकार की नायिकाओं का साज-सिंगार करना पड़ा। किन्तु नितान्त धूमिल होते हुए भी उन कवियों में भक्तिपरक संस्कारों के कुछ अवशेष विद्यमान थे, अत: राधा के प्रति उनका सामान्य विचार न बन पाया। अधमा अर्थात् गणिका, कुलटा आदि निम्न प्रकार के नायिका-भेदों में राधा शब्द का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। जहाँ कहीं उसके नाम का उल्लेख है—भावना का

१. रीतिकाव्य की भूमिका : डॉ० नगेन्द्र, पृ० १६१।

उन्नयनात्मक रूप ही द्रष्टव्य है। जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं कि 'रीतिकाल' तक भी भक्ति का प्रवाह पूर्णरूप से अवरुद्ध नहीं हुआ था। अर्वाचीन शोध के आधार पर कहा जा सकता है कि रीतिकाल में भक्तियुगीन समस्त सम्प्रदायों का सतत विकास होता रहा। राम-भक्ति, कृष्ण-भक्ति, संत-मत, सूफी-मत में से कोई भी धारा रीतियुग की परिधि में उपेक्षित नहीं रह पायी। यहाँ हमारा उद्देश्य 'राधा' के विवेचन तक ही सीमित है अतः यह निवेदन करना अनुचित न होगा कि तद्युगीन कृष्ण-भक्तिपरक सम्प्रदायों में राधा का विपुल विकास हुआ। तत्कालीन कवियों ने राधा को कृष्ण से भी ऊँचा स्थान प्रदान किया है। रीतिकालीन साम्प्रदायिक भक्तों की राधा-विषयक मान्यताओं का उल्लेख हमने विभिन्न सम्प्रदायों के अन्तर्गत ही किया है। अतः प्रस्तुत परिच्छेद में ऐसे कवियों को ही लिया गया है जिनका सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय-विशेष से तो नहीं रहा है किन्तु जिनकी मूल अंतश्चेतना भक्ति से इतर 'रीति' का अनुपालन रही है। ऐसे कवियों ने तीन प्रकार के ग्रन्थों की रचना की—रीति-शास्त्र, रीतिबद्ध काव्य तथा रीतिमुक्त काव्य। तीनों ही प्रकार के ग्रन्थों में राधा का विशद वर्णन प्राप्त है। रीतिशास्त्रों में उपलब्ध पद भी राधा के स्पर्श से वंचित न रह पाए। रीतियुगीन साम्प्रदायिक कवियों की राधापरक भावना को स्पष्ट करने के लिए कुछ प्रतिनिधि ग्रन्थकारों का विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

देव

देव ने ब्रजभाषा साहित्य को पचीस पुस्तकों से नीराजित किया। देव के काव्य में हृदय-पक्ष का प्राबल्य रहा है। राधा-कृष्ण के प्रेम-वर्णन में जो तन्मयता एवं रसार्द्रता इनके काव्य में दृष्टित होती है, अन्य किसी कवि की लेखनी उसे नहीं पकड़ पायी :

राधा कृष्ण किशोर युग पद बंदौं जग बंद।
मूरति रति सिंगार की सुद्ध सच्चिदानंद ॥[1]

किन्तु क्या इन्होंने उस युगल को पूज्य-भाव से आराध्य के रूप में

१. देव-ग्रन्थावली, पृ० १ (प्रेमचन्द्रिका)

अपनाया है ? कदापि नहीं। 'मूरति रति सिंगार की' वाक्यांश से अनायास ही उनका आशय स्पष्ट हो गया है। इनकी राधा आराध्या नहीं, रति में निमग्ना नारी है। इनकी वेदना में भी विद्यापति की-सी भावना निहित है। वह सामान्य विरहिणी की भाँति अपने मानस को दग्ध करने वाली ज्वाला से उत्पीड़ित हो चीत्कार कर उठती है :

राधे हौं सदन बैठी कहती हौ कान्ह-कान्ह,
हा हा कहु कान्ह वे कहां हैं—।[१]

◇ ◇ ◆

आवत है मुख जो सो बकै अरु खान औ पान नहीं सुधि कैसी।
ज्यों-ज्यों सखी बहरावति बातनि त्यों-त्यों बकै वह बावरी ऐसी ।।[२]

◇ ◇ ◇

राधे के बाढ़ी वियोग की बाधा सु देव अबोल अडोल डरी रही।[३]

राधा-कृष्ण में जैसे कोई अन्तर ही नहीं, दोनों एक-रूप हैं :

दुहुन को रूप गुन बोऊ बरनत फिरें
घर न थिरात रीति नेह की नई-नई।
मोहि मोहि मोहन को मन भयो राधामय
राधा मन मोहि-मोहि मोहनमई भई ।।[४]

राधा का विशिष्ट व्यक्तित्व तो भक्तिकाव्य में ही रहा। रीति-काव्य में राधा उच्चतर धरातल पर न रहकर गोपियों के प्रांगण में ही जा खड़ी हुई। इसी से रीतिकालीन राधा गोपियों की असूया का आलम्बन भी बनती रही :

गोकुल गाँव की गोपबधू बनि कै निकसी डर दै दै बुलायौ,
सो रही साज सिंगार सबै, बन देखन को बहु भेष बनायौ।
राधिका के हिय हेरि हरा, हरि के हिय कौ पिय कौ पहिरायौ,
केति तहाँ तिन भौतिन, भौतिन सों तिनकौ तन तायो ।।[५]

---

१. देव-ग्रन्थावली, पृ० २४ (प्रेमचन्द्रिका)।
२. देव-ग्रन्थावली, पृ० २५ (प्रेमचन्द्रिका)।
३. देव-ग्रन्थावली, पृ० २८ (प्रेमचन्द्रिका)।
४. देव-ग्रन्थावली, पृ० ३३ (प्रेमचन्द्रिका)।
५. भाव-विलास—प्रेमचन्द्रिका, पृ० ३२।

जड़ता संचारी के अन्तर्गत :

कालिंदी के तट काल्हि भटू, कहूँ है गई दोउन भेंट भली सी,
ठौर ही ठाड़े चितौत इतौतन, नैकऊ एक टकी टहली सी।
देव को देखती देवता सी, वृषभान लली न हली न चली सी,
नन्द के छोहरा की छवि सौं, छिनु एक रही छवि छैल छली सी ।।[1]

हावों के चक्रव्यूह से निकलती हुई वह नायिका-भेद के भँवर में जा फँसी। सम्भवतः कोई भी 'भेद-वीची' शेष न रही होगी जिसने कुछ क्षणों के लिए इसे आप्लावित न किया हो :

रूढ़ यौवना

राधिका सी सुर सिद्ध सुता, नर नाग सुता कवि देव न भू पर,
चन्द करौं मुख चंद निछावर, केहरि कोटि लटी कटि ऊपर।
काम-कमानहुँ को भृकुटीन पै, मीन मृगीन हूं को दृगहू पर,
वारौं री कंजन कंज कली, पिक बैनी के ओछे उरोजन ऊपर ।।[2]

क्रिया-विदग्धा

बंसुरी सुनि देखन दौरि चली, जमुना जल के मिस बेगि तबै,
कवि देव सखी के सकोचन सौं करिउठ सु औसर को वितवै।
वृषभान कुमारि मुरारि की ओर, विलोचन कोरनि सौं चितवै,
चलिवे को घरै न करै मन नेंक, कड़ै फिर फेरि भरै रितवै ।।[3]

देव के राधा-विषयक चित्र इतने मनोहर एवं आकर्षक हैं कि अनायास ही हृदय चमत्कृत हो उठता है। देव के आचार्यत्व ने कहीं भी राधा के कमनीय सुकोमल व्यक्तित्व को कुंठित नहीं किया। किशोरी राधा के रति-प्रसंग को ही इन्होंने ग्रहण किया है और उसका कोई भी कोना सूना नहीं छोड़ा। राधा का भक्तिकालीन वैशिष्ट्य अवश्य रीतिकाव्य में नहीं दिखाई पड़ता। जो कुछ भी महत्त्व है, वह रति की प्रतिमा के रूप में ही विद्यमान है।

---

१. भाव-विलास—प्रेमचन्द्रिका, पृ० ४१-४२।

२. भाव-विलास, पृ० १०८।

३. भाव-बिलास, पृ० ११९।

बिहारी

बिहारी और देव की कृष्णप्रिया नायिका भी प्रियतम के रूप में खोयी रहती है तथापि दोनो के चरित्र में अन्तर है। देव की राधा ने साँवरिया के रूप को शीश मे स्नेह, भाल मे कस्तूरी का बिन्दु, कंचुकी में चोवा, हृदय मे अभिलाषा, गहनों मे मखतूल और नेत्रो मे काजल डाल कर सँजोया है किन्तु बिहारी के राधा-कृष्ण हास-परिहास के ही है। वे दोनों रूप पर परस्पर मुग्ध होते एव लुकाछिपी करते ही दीख पड़ते है। बिहारी ने परकीया-प्रसग मे ही अपनी प्रतिभा का प्रसार किया किन्तु देव ने स्वकीया राधा को ही अपनाया है।

बिहारी ने भी ग्रन्थ के आरम्भ मे वन्दना की है :—

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परे, स्याम हरित दुति होय ॥[1]

यहाँ राधा को उन्होंने कृष्ण से भी ऊपर उठा दिया है। वह कान्ह से भी अधिक आनन्ददायिनी शक्ति मानकर स्वदुःख के परित्राण के लिए प्रार्थी है। बिहारी की भावना राधा के प्रति प्रेमासक्ति से आपूरित है। वे व्यजना के कवि हैं, इसी से ^ से काव्य को बचा ले गए हैं। उन्होंने राधा को रति की देवी माना है। ऐसे सभी सन्दर्भों में कवि ने अतिशय व्यंजना का प्रयोग किया है।

राधा-कृष्ण के प्रेम को उच्च धरातल प्रदान करते हुए कवि कहता है :

तजि तीरथ हरि राधिका, तन दुति करि अनुराग।
जिहिं ब्रज केलि निकुंज मग, पग पग होत प्रयाग ॥[2]

अलंकारों के जादूगर, बिहारी ने अपनी रिक कल्पना को राधा-कृष्ण के प्रेम पर लुटा डाला है :

चिर जीवौ जोरी जुरी, क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ये — ^ हलधर के वीर ॥[3]

---

१. बिहारी-बोधिनी, पृ० १।
२. बिहारी-बोधिनी, पृ० २।
३. बिहारी-बोधिनी, पृ० ३।

परकीया होते हुए भी राधा कभी कृष्ण से विलग पट पर नहीं आती। यही कवि की विलक्षणता है। मिलितालंकार का प्रयोग करते हुए परकीया राधा के संयोग-शृंगार का वर्णन कवि किस पटुता से करता है :

मिलि परछाहीं जोन्ह सों, रहे दुहुनि के गात।
हरि राधा इक संग ही, चले गली में जात ॥[1]

मोरचन्द्रिका को सम्बोधित करते हुए बिहारी मानिनी राधा (अन्योक्ति अलंकार) का वर्णन करते हैं :

मोरचंद्रिका स्याम सिर, चढ़ि कत करति गुमान।
लखिबौ पाँयन पै लुठत, सुनियत राधा मान।[2]

विपरीत रति-जैसे घोर शृंगार का आरोप भी राधा पर करने से तत्कालीन कवि हिचकिचाये नहीं। किन्तु बिहारी के व्यंजनात्मक वाक्-जाल ने सम्पूर्ण वर्णन को अश्लीलत्व से बचा लिया :

राधा हरि हरि राधिका, बनि आये संकेत।
दंपति रति विपरीत सुख, सहज सुरत हूं लेत ॥

मतिराम

नायिका-भेद रीतिकाल का एक प्रवाह था जिससे कोई भी कवि पार न पा सका। मतिराम की राधा भी अपने नित-नवीन हाव-भाव और हेला के साथ रंगमंच पर आती है। राधा अभिसारिका है—स्वयं दूतिका है। उसके प्रेमादान-प्रदान का एक नन्हा-सा निकुञ्ज है—जैसे उसकी समस्त प्रसन्नताओं का पुंज बन बैठा—वह संकेत-स्थल। पर विधि को उसका यह नित्य-मिलन भला न लगा। अचानक ही मेघ घुमड़ आये—मूसलाधार वर्षा निकुंज को बहा ले गई और नयनन में नीर भरे अनुशयाना राधा निर्निमेप दृष्टि से देखती ही रह गई :

आई ऋतु पावस अकाश आठौ दिसनि में
सोहति स्वरूप जलधर की भौर को।

---

१. बिहारी-बोधिनी, पृ० ८।
२. बिहारी-बोधिनी, पृ० ९।

मतिराम सुकवि कदम्बन की बास जुत
सरस बढ़ावै रस परम समीर को।
भौन ते निकरि वृषभान की कुमारि देख्यौ
ता समै सहेट को निकुंज गिरौ तीर को।
नागरि के नैननि में नीर कौ प्रवाह बढ़्यौ
देखत प्रवाह बढ़्यौ यमुना के नीर कौ॥

किन्तु उससे भी अधिक रुलाने के क्षण तो वे थे जब राधा एकाकी बैठी अपने विरह से आप्लावित वर्तमान क्षणों में मिलन के अणुओं को ढूंढ़ना चाहती थी :

पानी को कहानी कहा पानी कौ न पान करै
आह करि उठत अधिक उर आधिकै।
कवि मतिराम भई विकल बिहाल बाल
राधिकै जियाइ रे अनंग अवराधि कै।
याहि को कहायौ ब्रजराज दिन चारि ही में
करिहै उजारि ब्रज ऐसी रीति नाधिकै।
जैसे तू विलोक्यौ हरि बाकी ओर फेरि तैसै
बैरी हू सौ बैरी ना बिलोकै बैर साधि कै॥

राधा का प्रेम क्षण-भर का नहीं। बालपन से उसके प्रेम का पौधा फलता-फूलता चला आया है। पूर्वानुराग की स्थिति में वह :

गहि हाथ सों हाथ सहेली के साथ में
आवत ही वृषभानु लली।
मतिराम सुवास जो आवत नीरे
निवारत भौंरन की अवली।
लखि कै मन मोहन कौं सकुची,
करि चाहत आपनि ओट अली।
चित चोरि लयौ चख जोरि तिया
मुख मोरि कछू मुसकाई चली॥

रसखान

रसखान अनूठे कवि थे। उनका हृदय वैष्णव मिट्टी से बना भक्त-

हृदय था किन्तु अभिव्यक्ति शृंगार से प्रभावित थी। उनकी उक्तियों से भी भक्ति की अजस्र धारा प्रवाहित होती रही।

रसखान ने राधा-कृष्ण की रति के रमणीय चित्र अवश्य अंकित किये किन्तु उनमें वासना की गन्ध न समाने दी। उनकी राधा पर कृष्ण अपने व्यक्तित्व को न्योछावर करने के लिए उद्यत हैं—दोनों का प्रेम तपकर वासना खो बैठा है और शेष है शुद्ध-मुक्त उज्ज्वल प्रेम! दोनों विमुग्ध-से भोलापन लिये फाग खेलते हैं :

खेलत फाग सुभाग भरी, अनुरागहिं लालन को धरि कै,
मारत कुमकुम केसर के, पिचकारिन में रंग को भरि कै।
गेरत लाल गुलाल लली, मन मोहिनी मौज मिटा घरि कै,
जात चली रसखानि अली, मदमस्त करी मन को हरि कै॥

पर गोपियों से उनकी प्रेम की रीत छिप न पाई। उन्हें निरीह राधा से पूरी सहानुभूति है। वे सभी शुभचिन्तिका के रूप में कृष्ण को पूर्वानुरागिनी राधा की दशा कह सुनाती है :

बंसी बजावत आनि कढ़्यो री, गली में अली कछु टोना सौ डारें,
नेक चितै तिरछी करि दीठि, चलौ गयौ मोहन मूठि सी मारें।
ताही घरी सौं परी वह सेज पै, प्यारी न बोलति आनहुँ वारै,
राधिका जीहैं तो जीहैं सबै, न तो पीहैं हलाहल नन्द के द्वारै॥

रसखान की काव्य-प्रतिभा भक्त कवियों की विचारधारा के समानान्तर चलती रही—अतः कहीं उनके संघर्ष में नहीं आयी। रसखान ने राधा को स्वकीया का रूप प्रदान किया है :

मोर के पंखन मौर बन्यौ दिन दूलह है अली नन्द को नन्दन,
श्री वृषभानुसुता दुलही, दिन जोरी बनी बिधना सुख कंदन।
रसखानि न आवत मोपै कह्यौ, कहु दोऊ फँसे छवि प्रेम के फंदन,
जाहि विलोकै सबै सुख पावत, ये ब्रज जीवन है दुःख दंदन॥

कवि स्वयं भी अपनी आराध्या राधा की रूप-माधुरी पर विमुग्ध-

सा गा उठता है :

दृग दूने खिंचे रहे कानन लौं, लट ग्रानन पै लटकाय रही,
छक छैल छबीली छटा छहराय के, कौतुक कोटि दिखाय रही।
झुम झूम झमाकन चूम अमी, चहि चाँदनी चंद चुराय रही,
मन माय रही रसखान महा, छवि मोहन को तरसाय रही ।।

वह इतनी लावण्यमयी-ग्राभामयी है कि कृष्ण भी उस के लिए ललचा उठते हैं। पर राधा राधा ही है। कृष्ण उसके इंगितों पर नृत्य करते-से जान पड़ते हैं। राधा का ग्रपूर्व सौन्दर्य, और फिर मानिनी रूप—भला वह किस वस्तु में किसी से कम है? कृष्णको, जिनकी लीला की दुहाई सम्पूर्ण संसार देता है, ढूँढ़ता हुआ कवि निकुंज में पहुँचा और देखा कि वह बैठे राधा के पाँव दबा रहे हैं :

ब्रह्म में ढूँढ्यौ पुरानन गानन, वेद रिचा सुनी चौगुने चायन,
देख्यौ सुन्यौ न कहूँ कबहूँ, वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन।
टेरत हेरत हारि पर्‌यौ, रसखानि बतायौ न लोग लुगायन,
देख्यौ दुरौ वह कुंज कुटीर में, बैठौ पलोटत राधिका पायन ।।

भक्तिकालीन पूर्वाग्रह ने यहाँ रसखान की रसिकता को भक्ति में डुबो दिया। राधा सामान्य धरातल से उठकर विशिष्ट सिंहासन पर ग्रारूढ़ हो गई ।

घनानंद

रीतिकालीन स्वच्छन्द कवियों में घनानन्द का स्थान बहुत ऊँचा है। कृष्ण से उन्होंने ग्रपना सहज सम्पर्क स्थापित किया और विरह-मिलन के झूलों में वे झूलते रहे। किन्तु राधा की परिकल्पना में योग देने वाला उन्हें कहा जाय ग्रथवा नहीं, यह विवाद का विषय है। अन्य कवियों की भाँति घनानन्द के काव्य में न तो कहीं कृष्ण का ही उल्लेख है, न राधा का। 'सुजान' का नाम लेकर वे कृष्ण का स्मरण करते हैं। ग्रतः राधा के प्रति स्पष्ट उल्लेख तो उनमें मिलते ही नहीं। सम्भव है घनानन्द ने स्वयं ग्रपने को राधा के स्थान पर रख कर कृष्ण की ग्राराधना की हो, किन्तु इस दृष्टि से राधा पर विचार

करना न्यायसंगत नहीं जान पड़ता है।

उक्त कवियों के अतिरिक्त भी अनेक अन्य रीतिकालीन कवियों ने 'इष्ट युगल' को अपने काव्य का आलम्बन बनाया। रीतिबद्ध साहित्य में बेनी, सेनापति, बनवारी, जोधा, ठाकुर आदि का प्रमुख स्थान है। स्वच्छन्द प्रेमधारा मादक कविता का साहित्य है। आलम और शेख़ के पद पढ़कर अनायास ही पाठक झूम उठता है। उसमें एक प्रकार की तड़पन—विरह की साक्षात् ज़्वाला जैसे प्रज्वलित हो उठती है। इसका कारण सम्भवत: यह है कि उन पर मुसलमानी काव्यधारा के 'इश्क़' की तीव्रता का प्रभाव पड़ा हुआ था। पद्माकर, ग्वाल, प्रतापसिंह आदि कवियों ने भी अनेक श्रृंगारात्मक पदों का सृजन किया। प्रस्तुत निबन्ध की सीमाओं को लक्षित करते हुए जिन कवियों को इस परिच्छेद में लिया गया है वे रीतियुगीन श्रृंगारी कवियों की समस्त धाराओं का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। रीतिबद्ध अथवा रीति-मुक्त कवियों की मूल अंतश्चेतना 'रति' थी, तथापि राधा का अंकन प्राय: सभी कवियों ने किया है। अलौकिकता के क्षेत्र में चिर-विख्यात राधा का नाम लेकर जिन पदों की रचना हुई है उनमें तत्कालीन कायिक विलास की मात्रा अपेक्षाकृत न्यून रूप से दृष्टिगत होती है।

११

आधुनिक काल में राधा

रीतिकाल के शृंगारपूर्ण एकांगी साहित्य में न कोई नवीनता थी, न था भावनाओं का वैविध्य। मुगल-साम्राज्य की विलासी छत्रछाया में उत्पन्न यह साहित्य उस शान्त जलाशय के समान था जिसमें प्रत्येक कवि ने अपने कर-कमलों से हिलाकर कुछ समय के लिए लहरें उत्पन्न कीं और फिर वही शान्ति, वही नीरवता! किन्तु उन करों में न तो इतनी हलचल करने की सामर्थ्य ही थी कि जलराशि के तल में विप्लव उत्पन्न कर सकें और न भावना का इतना उद्वेग ही था कि वह जलराशि अपनी सीमाओं को तोड़कर चारों ओर फैल जाय। अतः इस साहित्य में न तो गहनता के ही दर्शन होते हैं, न विस्तार के ही। अलंकारों का चमत्कार साहित्य-संग्राम में अधिक समय तक नहीं टिक पाया। परिणामतः उसके प्रति विद्रोह की भावना जाग उठी।

ब्रज के कछारों में स्वच्छन्द विहार करने वाली उन्मादिनी राधा भी अपनी कुछ सीमाएँ पहचान गई। यों तो राधा-विषयक साहित्य की विपुल राशि रीतिकाल तक ही सीमित रह गई थी। आधुनिक कवियों में से अधिकांशतः न तो इतने आस्तिक ही थे कि राधा के प्रति श्रद्धापूर्वक भक्ति-काव्य का सृजन करते और न रीतिकालीन वासना की प्रखरता का ही चित्रण करना उनके लिए सम्भव था। अतः इस विषय को बहुत ही कम कवियों ने अपनाया। मानसिक एवं भौतिक संघर्ष से युक्त उनके दैनिक जीवन की प्रतिछाया उनके सम्पूर्ण साहित्य में दृष्टि-गत होती है।

पाश्चात्य सभ्यता के आगमन ने वर्षों से कुचली जाती हुई नारी में वातावरण के विरुद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न की। अपने अधिकारों के लिए वह जागरूक हो उठी। साहित्य की नारी भी अब वह सुकुमार पुष्प मात्र न रही, जिससे जब इच्छा हुई, सौरभ ग्रहण किया और

फिर कुचल डाला। इसमें अब वे शूल भी थे जो कुचलने वाले को अपने अस्तित्व से अवगत करा सकें।

आधुनिक काल की देन, खड़ी बोली, ही नारी के इस खड़ेपन को व्यक्त करने में समर्थ हो सकती थी। ब्रजभाषा में रचित आधुनिक साहित्य भी पाश्चात्य नारी के प्रतिक्रियात्मक रूप को पूरी तरह से व्यक्त न कर पाया। ब्रजभाषा की सुकोमलता ने नारी के 'पौरुष' से जैसे हार मान ली। इसी से सम्भवतः ब्रजभाषा को बहुत ही कम कवियों ने अपनी विचारधारा का माध्यम बनाया। उनमें से मुख्य रूप से श्री हरिश्चन्द्र तथा श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ही विशेष उल्लेखनीय हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पर, रीतिकालीन तथा भतिकालीन, दोन शैलियों का प्रभाव पड़ा। उनके पदों में राधा भी दो रूपों में अवतरित हुई है। कहीं वे वल्लभ-सम्प्रदाय से प्रभावित शैली में आराध्या राधा की स्तुति करते हैं तो कहीं नायिका-भेद एवं रीत के आवर्त्त में राधा को ले जाकर खड़ा करते हैं। उनके आविर्भाव के समय तक रीतिकालीन विचारधारा साहित्यकारों को प्रभावित किये हुए थी। यद्यपि उस साहित्य में विप्लव लाने का बहुत-कुछ श्रेय श्री हरिश्चन्द्र को प्राप्त है, तथापि वह अपने-आप भी रीतिकालीन भावों से पूर्णरूपेण विमुक्त नहीं हो पाए थे। अतः उनका सुधारवादी हृदय कहीं-कहीं रीतिकालीन श्रृंगारात्मकता में बह गया है।

रसखान की भाँति ब्रज भक्तिपरक पद लिखने से भी भारतेन्दु जी नहीं चूके। उन पदों में राधा को ब्रज की देवी मानकर उसकी आराधना की गई है। दूसरे शब्दों में वे राधा की स्वतन्त्र आराधना नहीं करते, वरन् ब्रज की भक्ति के निमित्त ही राधा को उसकी देवी मान कर कहते हैं :

ब्रज के लता-पता मोंहि कीजै !
गोपी-पद-पंकज पावन कौ रज जामें सिर भीज ॥

आवत जात कुंज की गलियन रूप-सुधा नित पीजै ।
श्री राधे राधे मुख यह वर हरीचन्द को दीजै ॥[1]

शक्ति के रूप में राधा को देखकर कवि गा उठता है :

जय वृषभानु नंदिनी राधा !
शिव ब्रह्मादि जासु पद पंकज हरि वस हेतु अराधा ॥[2]

वह करुणामयी है, चिरप्रसन्नवदना तथा सम्पूर्ण सांसारिक कष्टों का दहन करने वाली[3] है। जिस राधा की स्तुति से सम्पूर्ण भौतिक कष्टों का अन्त हो जाता है उसी के दर्शन से विस्मृत सा एवं चकित-सा कवि कहता है :

जय जय जय जय जय श्री राधा !
जब तें प्रगट भई बरसाने नासी जन के तन की बाधा ॥[4]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य में युगलोपासना की ध्वनि भी कहीं-कहीं सुनाई पड़ती है :

चिर जीवौ यह अविचल जोरी !

नन्ददास की मधुर भक्ति में बहते हुए भारतेन्दु जी राधा-कृष्ण के हिंडोले में झूलने पर विमुग्ध अपनी कल्पना में उन्हें साक्षात् देखते रह जाते हैं :

ए री, आज झूलै छै जी श्याम हिंडोरे ।
बृन्दावन री सघन कुंज में जमुना जी लेतीं हलोरे ।
संग कारे वृषभानु-नंदिनी सौहै छै रंग गोरे ॥
हरीचन्द जीवन-धन वारो मुख लखतीं चित चोरे ॥[5]

---

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ० ६८, पद संख्या-६७
२. वही—कार्तिक-स्नान, पृ० १९ ।
३. करुनामयी प्रसन्न चंदमुख हँसत हरित भव बाधा ।
हरीचन्द तें क्यौं जग जीवत जिन नहिं इनहिं अराधा ॥
४. भारतेन्दु-ग्रन्थावली, पृ० ४५१, पद-संख्या ३८ ।
५. वही—प्रेमाश्र -वर्णन; पृ० १२३, पद-संख्या ३१ ।

राधा-कृष्ण नयनन में बातें करते हैं रीझते हैं और एक-दूसरे के प्रेम में उन्मत्त से कभी जीत जाते हैं, कभी हार भी जाते हैं :

बाजी नयनन में लागी !
रसिकराज इत उत श्री राधा परम प्रेम-रस-पागी ।।
दोऊ हारे दोऊ जीतें - आपुस के अनुरागी ।
'हरीचंद' निज जन-सुखदायक रहे केलि निसि जागी ।।[1]

यह है रीतिकालीन प्रेमातिशय की झलक :

आजु नंदलाल पिय कुंज ठाड़े भये,
स्रुवन सुभ सीस पैं कलित कुसुमावली ।

◇ ◇ ◇

दास हरिचन्द बृज-चन्द ठाढ़े मध्य,
राधिका बाम दच्छिन सुचन्द्रावली ।[2]

रतिविलास में लिप्त राधा-कृष्ण—सारी रात झूलने में ही बिता देते हैं । उस अँधियारी वर्षा की बीहड़ रात की ओर जैसे उनका ध्यान ही नहीं जाता :

बिजुरी चमकै जोर से नभ छाये घनघोर हो ।
मोर सोर चहुँ ओर करैं दादुर बन कीनी रोर हो ।[3]
सखी झुलावै प्रेम सौं हो पहिरे रँग-रँग चीर हो ।
झूलें प्यारी राधिका संग पीतम स्याम सरीर हो ।
लखि जल बाहीं दोऊ को दीने बलिहारी हरिचंद हो ।।

और एक रात वह भी है जब राधा प्रतीक्षा करते-करते थक गई, किन्तु :

बीत चली सब रात न आये अब तक दिल-जानी ।
खड़ी अकेली राह देखती, बरस रहा पानी ।।

---

१. भारतेन्दु-ग्रन्थावली—प्रेमाश्रु-वर्णन, पृ० ८१, पद-संख्या ७।
२. वही, प्रेमाश्रु-वर्णन, पृ० ४४१, पद-संख्या, १४।
३. वही, प्रेम-माधुरी, पृ० १६०, पद-संख्या ७०।

इतनी प्रगाढ़ता के पश्चात् कृष्ण का मथुरा चले जाना कितना बड़ा धक्का था ! जब उद्धव ब्रज में पहुँचे तब राधा की अस्त-व्यस्त दशा पर वह भी दुःख से आर्द्र हो उठे होंगे। बेचारी राधा :

भूली सी भ्रमी सी चौंकी चकी सी थकी सी गोपी
दुखी सी रहति कहु नाहिं सुधि देह की ।[1]

भारतीय सभ्यता से अतिरंजित भारतेन्दु के हृदय ने राधा को सर्वथा मौन ही रखा है। उसके अनुभाव ही उसकी दशा को व्यक्त करते हैं। लगता है कि उस अपार दुःख में राधा तो जैसे अपनी वाणी ही खो बैठी है।

वह क्षमाशील है, शक्तिरूपा है, आराध्या है, संसार के दुःखों का नाश भी करती है। किन्तु स्वयं अपने दुःख में डूबकर देवी से मानवी बन गई है। उसे रोना भी आता है किन्तु सिसकियों को दबा-कर वह भारतीय ललना का आदर्श स्थापित करती है। 'प्रिय-प्रवास' की राधा की भाँति आधुनिका के रूप में वह 'सबला' होने का दावा नहीं करती—और न वह समाज-सुधारिका के रंग में रँगी है। उसका कर्त्तव्य अपनी जीवन-नैया को खेते चलना है—कभी दुःख का थपेड़ा विह्वल कर देता है तो कभी सुख की शान्तिकारी लहरें भी उसका प्रक्षालन करती हैं।

ये जीवन के टेढ़े-मेढ़े रास्ते, जो मानव-मात्र को पार करने हैं, वह भी पार करती चलती है। उसे अपने आराध्य पर पूरा विश्वास है और वह विश्वास ही उसके प्राणों को सँजोये बैठा है। उदात्त-चरिता होते हुए भी वह मानवी ही बन पायी, भारतेन्दु जी उसे पूर्णरूप से देवी के सिंहासन पर आरूढ़ नहीं कर पाये। भले ही उन्होंने राधा को रीतिकालीन अतिमानवीयता से ऊपर उठाया है। किन्तु शृंगारिकता की डोर ने उसे अपनी ओर खींचकर बहुत दूर न जाने दिया।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

वनमाली की अबला अवश वियोगिनी का जितना सुन्दर चित्रण

---

१. भारतेन्दु-ग्रन्थावली—प्रेमाश्रु-वर्णन, पृ० ४४८, पद-संख्या ५।

रत्नाकर जी की लेखनी से हुआ, उतना सम्भवत: ब्रजभाषा का कोई अन्य कवि नहीं कर पाया। रत्नाकर जी का वैष्णव हृदय राधा के प्रति भक्ति से आपूरित था। दूसरी ओर वे दरबारी कवि थे अत: अलंकार-योजना की प्रवृत्ति भी सम्पूर्ण उद्धवशतक को आप्लावित किये है।

भाषा की प्रौढ़ता तथा भावना की घुमड़न के योग से उत्पन्न 'उद्धवशतक' यद्यपि समय-समय पर रचित मुक्तक पदों का संकलन मात्र है तथापि उसकी योजना का क्रम इतना सुन्दर है कि वह पुस्तक प्रबन्ध-काव्य की भाँति प्रभावशाली बन गई है।

रत्नाकर जी ने पूर्व-रचित तद्विषयक सम्पूर्ण सामग्री का अध्ययन करने के पश्चात् ही इन मुक्तकों की रचना की है। उनकी मौलिकता ने पुरातन कथावस्तु को भी चिरनूतन स्वरूप प्रदान किया है। रूप और रस, दोनों का महासागर उसमें उद्वेलित हो रहा है। साथ ही प्रेम और भक्ति, विज्ञान और कर्म, भूगोल और खगोल, दर्शन और इतिहास प्रभृति सृष्टि के जितने भी विषय हैं उन सबकी चर्चा उसमें है।

भागवत में भी राधा का व्यक्तित्व विकसित नहीं हो पाया है। उसमें न भावों की वांछनीय गहनता है, न सुस्थिरता ही। भागवत की राधा चंचल बालिका है—सूरसागर की राधा समानाधिकारिणी प्रेमिका है और उद्धव-शतक में आकर राधा का प्रणयिनी-रूप विशेष रूप से उभरा है।

अन्य ग्रन्थों की भाँति यहाँ राधा का एकांगी प्रेम नहीं है। कृष्ण भी उससे प्रेम करते हैं, तभी तो यमुना में बहता हुआ सूखा कमल कृष्ण के हृदय में भावनाओं की घुमड़न उत्पन्न कर देता है :

न्हात जमुना में जलजात एक देख्यौ जात
जाकौ अध उरध अधिक मुरझायौ है।
कहै रतनाकर उमहि गहि स्याम ताहि
बास-बासना सौं नैंकु नासिका लगायौ है।
त्यों ही कछु घूमि झूमि बेसुध भए कै हाय,
पाय परे उखरि अभाव मुख छायौ है।

पाए घरी द्वैक में जगाइ ल्याइ ऊधौ तीर
राधा-नाम कीर जब औचक सुनायौ है ॥[1]

कमल के बहाने विरहाग्नि से आतप्त कुम्हलाई राधा का कवि ने कितना सुन्दर वर्णन किया है। एक दूसरा संकेत इस पद से और स्पष्ट होता है—वह यह कि राधा पद्मिनी नायिका थी। इसी कारण कमल की गन्ध से श्रीकृष्ण को राधा की स्मृति हो आयी :

पाइ बहै कंज में सुगंध राधिका कौ मंजु
ध्याए कदली-बन मंतग लौं मताए हैं।[2]

राधा के प्रेम में विभोर कृष्ण विस्मृत-से उद्धव का सहारा ले सँभलने का प्रयास करने लगे। राधा में यही विशेषता है कि कृष्ण उसकी श्रीशोभा पर मुग्ध हैं। कृष्ण की अनेक प्रेमिकाएँ हैं—वे सभी के प्रेम का स्वागत करते हैं किन्तु अपने हृदय में सँजोकर उन्होंने राधा को ही रखा है। उसके समक्ष अन्य सभी नगण्य-सी, अस्तित्वहीन-सी जान पड़ती हैं।

उद्धवशतक में सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि यद्यपि राधा रंग-मंच पर कभी आती ही नहीं—फिर भी उसके चरित्र का अपूर्व अंकन सहज प्राप्त है। 'साकेत' की उर्मिला वाली स्थिति में ही उद्धवशतक की राधा है। उर्मिला की भाँति ही राधा का प्रेम भी अत्यन्त गहन एवं निर्मल है। किन्तु दोनों में एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि राधा परकीया है, कृष्ण की प्रेमिका मात्र है जबकि उर्मिला स्वकीया पत्नी है। अतः राधा के लिए जीवन में सब कुछ देने के लिए ही है—कुछ प्राप्त करने का उसे कोई अधिकार नहीं। अपना सर्वस्य, कौमार्य, निष्ठा, माधुर्य और यौवन न्यौछावर करके भी प्रतिदान में कुछ पाने की इच्छा करना उसकी अनधिकार चेष्टा ही बनी रही। फिर भी वह सन्तुष्ट थी—क्योंकि उसे विश्वास था कि कृष्ण उसकी ओर से विमुख नहीं हैं।

उद्धव के ब्रज पहुँचने पर भी न उसके मुख से कोई शिकायत निकली

---

१. उद्धवशतक, पद १

२. उद्धवशतक, पद २

न ग्राह — यहाँ तक कि ब्रज के नागरिकों के मध्य वह दिखाई ही नहीं देती।

पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से रत्नाकर की गोपिकाएँ भी वाग्विदग्धा बन गई हैं। जब उद्धव कोई बात कहते हैं तब लगता है कि इसका तो कोई उत्तर ही नहीं हो सकता; लेकिन जब गोपियाँ उनकी बात का जवाब देती हैं, तब पाठक चमत्कृत हो जाता है—यह कवि की सबसे बड़ी विशेषता है · यही है नाटकीयता का सुन्दर समावेश। ब्रज के उस मनोमुग्धकारी वातावरण में पहुँचने पर उद्धव की ज्ञान-गठरी ढीली पड़ गई—उसकी सम्पूर्ण ज्ञानराशि करील के कुंजों में बिखरती-सी जान पड़ने लगी। और जब नागरिकों के सम्मुख वे पहुँचे तब तो दशा ही बदल चुकी थी। उनके विरह-निवेदन, उनके तर्क-वितर्कों ने उद्धव को निरुत्तर कर डाला। पर उनके दो नयन उन नागरिकों के मध्य कृष्ण की प्रेयसी राधा को ढूँढ़ रहे थे, तभी उन्होंने कहा :

फैले बरसाने में न रावरी कहानी यह,
बानी कहूँ राधे आधे कान सुनि पावै ना॥

उनका ज्ञानाप्लावित हृदय भी रो दिया। राधा का अगाध प्रेम गोपी मात्र पर प्रकट था। उनकी उक्ति यह सिद्ध करती है कि राधा का प्रेम तीव्रतम था—अथवा वही कृष्ण की सर्वाधिक प्रिया थी। प्रत्येक सखी की सहानुभूति उसके लिए फूटी पड़ती है। कहीं राधा ने कृष्ण का यह ज्ञानपूर्ण उपदेश सुन लिया तो उसकी दशा क्या होगी? गोपिकाओं की कल्पना से बाहर की बात है।

प्रश्न उठता है कि उद्धव के आगमन पर कृष्ण का सम्पूर्ण प्रेमी-मण्डल उपस्थित है तो राधा वहाँ क्यों नहीं दिखाई पड़ती। इसके सम्भवत: दो ही कारण हो सकते हैं। प्रथम तो यह है कि रत्नाकर जी स्वयं भारतीयता से ओत-प्रोत थे—इसी से उनकी राधा लज्जाशीलानारी है। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि प्रथमत: किसी श्याम-वर्ण व्यक्ति के आने का सामाचार सुनकर राधा ने समझा हो कि कृष्ण ही आ गये हैं—फिर उसके मानी हृदय ने प्रेम की परीक्षा लेनी चाही हो। कुछ भी हो, किन्तु उस नारी-मण्डल में राधा का अभाव था।

उद्धव के प्रस्थान के समय वह उनसे मिली अवश्य, किन्तु न उसकी जिह्वा से कोई शिकायत का शब्द निकला, न किसी प्रकार की विरह-व्यथा का गान करना ही उसने समीचीन समझा—कृष्ण के हृदय में अतीत की मधुर स्मृतियाँ झकझोर डालने के लिए उसने उद्धव को बाँसुरी दी थी। शायद इसीलिए कि कृष्ण के अधरों का स्पर्श पा वह वंशी राधा की दशा पर रो देगी। और कृष्ण अपनी विह्वला कान्ता के लिए तड़प उठेंगे। राधा के उस स्मृति-चिह्न ने उद्धव के हृदय की कितनी ही पूज्य एवं पवित्र भावनाओं पर अधिकार जमा लिया :

प्रेम मद छाके पग परत कहाँ के कहाँ
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै रतनाकर यों आवत चकात ऊधौ
मानौ सुधियात कोऊ भावना भुलाई है।
धारत धरा पै न उदार अति आदर सौं
सारत बंहोलिनिजो आँस अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ
एक कर बंसी बर राधिका पठाई है॥

राधा की मूक व्यथा ने उसकी आहों को चुपचाप ढाँप दिया किन्तु उस मौन ने प्रेम की तीव्रता को इतनी स्पष्टता से अभिव्यक्त किया है कि पाठक का हृदय द्रवीभूत हो जाता है। लेखनी की सम्पूर्ण जादूगरी लेकर रत्नाकरजी ने चिर-विरहिणी राधा का चित्रण किया है। उसके प्रेम की गहनता सराहनीय है—उसे किसी से द्वेष नहीं—कुबरी से भी ईर्ष्या नहीं। यदि खेद है तो केवल अपने भाग्य पर। अतीव सुन्दरी होते हुए भी राधा अभिमान से अछूती है। उद्धवशतक में व्यक्त उसकी मधुर कान्ति साहित्य-जगत् में अद्वितीय है। उसे कृष्ण की किसी वस्तु की वांच्छा नहीं। उसके पास का सम्पूर्ण प्रेम-सौरभ मात्र लुटाने के लिए है,पर बदले में कुछ पाना अनधिकार चेष्टा-जैसा ही रहा।

१२

उपसंहार

गीता का उपदेश देने वाले योगेश्वर कृष्ण के जीवन-चित्रों को कवियों ने जिस तूलिका से राग के स्पर्श देकर अतिरंजित एवं सरस बनाया है—वह तूलिका, राधा, बहुत पुरानी नहीं है। ऐतिहासिक शोध के आधार पर राधा का उद्भव-काल निश्चित रूप से स्थिर नहीं किया जा सकता। किन्तु आज उसके साहित्य-व्यापी व्यक्तित्व को कोरी कल्पना के आधार पर निर्मित सिद्ध करना आलोचकों के लिए बहुत कठिन हो गया है।

राधा का उद्भव-स्थल ढूँढ़ने वालों ने वेदों में भी 'राधा' शब्द का प्रयोग खोज निकाला, किन्तु वहाँ इसका प्रयोग क्रिया-पद या विशेषण के रूप में हुआ है, संज्ञा के रूप में नहीं। नित्य आराधना में तन्मय रहने वाली गोपिका को राधा कहा गया—ऐसी मान्यता भी कुछ समय तक स्वीकृत रही। दूसरी ओर, ज्योतिषशास्त्र में दिये गए नक्षत्रों के नाम का भ्रम भी अन्वेषकों में प्रचलित हुआ किन्तु इन सबसे पूर्व भी राधा कहीं-न-कहीं रही ही होगी, यह तो निश्चित ही है। अतः इन मान्यताओं की ढहती दीवारों पर आसीन सर्वाधिक सम्भव एवं संगत मन्तव्य राधा की मूल रूप में आभीर जाति की इष्ट देवी बताने वालों का है।

इस मान्यता के अनुसार आभीर जाति की आराध्या का नाम 'राही' तथा इनके नेता का नाम 'कान्ह' था। भारतवासी आर्य जब उक्त जाति के सम्पर्क में आये, तब उन प्राचीनों ने कान्ह का कृष्ण के साथ तादात्म्य करके 'राही' के आधार पर देवी राधा की परिकल्पना की और फिर राधिका को कृष्ण-चरित का अभिन्न अंग बना दिया।

इतिहास के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि योगेश्वर कृष्ण से सम्बद्ध सम्पूर्ण कार्य-व्यापार मथुरा एवं द्वारका में ही सम्पन्न हुआ था। साथ ही उनके बाल्यकाल से सम्बद्ध किसी लीला का वर्णन एवं वृन्दावन में शैशव व्यतीत करने का उल्लेख भी इतिहास में कहीं नहीं मिलता। यदि कहीं ऐसा बर्णन मिलता है तो पुराणों में। किन्तु पुराणों में ऐतिहासिकता कितनी है—यह अभी तक विवाद का विषय ही बना हुआ है। इसी से राधा-कृष्ण के भक्तों ने कान्ह के लीलामय चरित से जब कृष्ण के जीवन की कड़ी जोड़ी तो वे योगेश्वर वासुदेव को तमोमय कारा से निकाल वृन्दावन ले गये। वहाँ उनके लीलामय जीवनांश का विस्तृत वर्णन करके इतिहास-संगत जीवन की परिसमाप्ति से पूर्व फिर से उन्हें मथुरा पहुँचा गये और इस प्रकार आभीर जाति के कान्ह तथा महाभारत में चित्रित गीता के उपदेशक योगेश्वर भगवान् कृष्ण को एक ही तागे में पिरोकर उन प्राचीन कवियों ने भारतीय रसिक—घनश्याम—कन्हैया की रचना की।

राधा ने भारतीय साहित्य, दर्शन और धर्म के तीन-तीन प्रांगणों को अपने नर्तन की रुनझुन से एक विशेष गति दी एवं स्पन्दित किया।

दर्शकों के सम्मुख राधा का प्रवेश सर्वप्रथम संस्कृत-साहित्य के मंच पर हुआ। पाँचवीं शताब्दी के ग्रन्थ पंचतंत्र में संधान करने पर 'राधा' शब्द का उल्लेख तो अवश्य मिलता है, किन्तु वह स्पष्ट एवं मुखर नहीं कहा जा सकता। फिर भी इतना तो निश्चित ही है कि इससे पूर्व राधा का उल्लेख साहित्य में नहीं हुआ होगा।

भट्टनारायण के 'वेणीसंहार' में जिस नित्यलीला-विलासनी राधा का उल्लेख है उसका परवर्ती भक्ति एवं काव्य से सहज सम्बन्ध दृष्टिगत होता है।

'ध्वन्यालोक' में विरहिणी राधा के रुदन-स्वर की सिसकी है। इसके पश्चात् नलचंपू, शिशुपाल-वध, दशरूपक, दशावतार-चरित, काव्यानुशासन में उत्तरोत्तर उसका स्वरूप स्पष्टतर ही होता गया है। राधा की गाथा को इतना विस्तार प्रदान करने का श्रेय पुराणों को प्राप्त है। पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, आदिपुराण, विष्णुपुराण, वायुपुराण आदि सभी में राधा का विशद बर्णन मिलता है। आश्चर्य की बात यह है

कि श्रीमद्भागवत में 'राधा' नाम का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता, यद्यपि एक गोपी-विशेष का वर्णन अवश्य है।

दर्शन के क्षेत्र में राधा का उद्भव सर्वप्रथम पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग मधुसूदन सरस्वती के कर-कमलों से हुआ। उन्होंने वेदान्त में भक्ति की स्थापना करते हुए कहा कि ज्ञान-मार्ग वस्तुतः बहुत ऊँचा मार्ग है—ज्ञान से मुक्ति निश्चित रूप से मिलती है किन्तु जन-साधारण के लिए वह दुर्लभ है। योगी व्यक्ति ही उसका अनुसरण करने में समर्थ हो सकते हैं। यह अपेक्षाकृत सहज और सरल है। एक ही अभीप्ट की प्राप्ति के लिए दो मार्गों के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि प्रत्येक मानव में वासना का तत्त्व विद्यमान रहता है। पूर्वजन्म के कर्मानुसार इस जीवन की वासना एवं संस्कारों का निर्माण होता है—अतः अपने संस्कार के अनुसार ही मानव भक्ति अथवा ज्ञान के मार्ग को अपनाता है अथवा दोनों का ही त्याग कर देता है। प्रस्तरवत् दृढ़ संयमी व्यक्तियों के लिए ज्ञान-मार्ग का अनुसरण ठीक है किन्तु द्रवित-हृदय मानवों के लिए यह ठीक नहीं। द्रवित-हृदय जनभक्ति के द्वारा ब्रह्म से तद्रूपता स्थापित कर लेता है—और यही बिम्ब-प्रतिबिम्बवाद है। उन्होंने भागवतपुराण को गीता का भाष्य माना तथा भागवत का भाष्य चैतन्य-चरितामृत को। उन्होंने राधा को ब्रह्म की ह्लादिनी शक्ति के रूप में चित्रित किया है।

पूर्व मध्यकाल तक पहुँचते-पहुँचते राधा ने एक ओर साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश पा लिया था तो दूसरी ओर दर्शन के क्षेत्र में। इन दोनों के योग से एक नवीन क्षेत्र का उद्भव हुआ, वह था भक्ति-क्षेत्र। यद्यपि जयदेव के 'गीत-गोविन्द' में भी भक्ति-भावना की धुँधली सी झलक प्रतिभासित हो चुकी थी, तथापि वे किसी निश्चित विचारधारा को स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं कर पाये थे। दूसरी ओर, दार्शनिक मधुसूदन ने वेदान्त के क्षेत्र में राधा की स्थापना कर दी थी।

साहित्य और दर्शन के योग से जिस भक्ति-भावना का जन्म हुआ उसने एक ओर काव्य से मधुरिमा के संस्कार तथा दूसरी ओर दर्शन से ब्रह्म और जीव की अमर गाथा को ग्रहण किया। राधा के चरित्रांकन-

कर्ताओं ने दार्शनिक पृष्ठभूमि पर काव्यात्मक सरस राधा के सुन्दर चित्रों का अंकन किया। उनकी अभिव्यक्ति काव्यात्मक थी तथा विचारधारा दार्शनिक। इसी अपूर्व योग को आलोचकों ने भक्ति की संज्ञा प्रदान की। पौराणिक काल में राधा को सर्वत्र सर्वशक्तिमान कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति के रूप में चित्रित किया गया था। किन्तु भक्ति-भावना के विभिन्न सम्प्रदायों में प्रसारित होने के कारण राधा के चरित्र में भी वैविध्य के दर्शन होने लगे। प्रेमलक्षणा-भक्ति में उसका स्वकीया एवं परकीया-भेद से वर्णन हुआ। इन सम्प्रदायों में प्रतीक-योजना की स्थापना की गई। प्रत्येक सम्प्रदाय में भावना की विभिन्नता के कारण राधा ने विभिन्न रूप धारण किये।

निम्बार्क-सम्प्रदाय में राधा अनेक शक्ति-स्वरूपा है। भगवान की अप्राकृत स्वरूप-शक्ति की सारभूता शक्ति है। वह ह्लादिनी शक्ति का सारभूत विग्रह है। वह नित्य-लीला करती है। उक्त सम्प्रदाय में स्वरूप-लीला को विशेष महत्त्व दिया गया। वह भगवत्-कोटि और जीव-कोटि, दोनों में ही विचरण करती है।

चैतन्य-सम्प्रदाय में चैतन्य राधा की भाँति ही कृष्ण के विरह में आजीवन तप्त रहे। दूसरे शब्दों में, राधा और चैतन्य की विचारधारा के समानान्तर चलने के कारण अनुयायियों ने चैतन्य को गौरावतार की संज्ञा प्रदान की। राधा-तत्त्व और गौर-तत्त्व में इतना साम्य है कि दोनों को एक ही विचारधारा के दो नाम कहा जा सकता है। राधा को ब्रह्म की एकात्मिका शक्ति मानकर भी इन कवियों ने उसको त्रिविधा बताया (संधिनी शक्ति, संवितशक्ति तथा ह्लादिनी शक्ति)। इन तीनों रूपों की प्रतिष्ठा चैतन्य-सम्प्रदाय में की गई। साधारणी, समंजसा तथा समर्था रति में से समर्था रति को उत्कृष्टतम बताते हुए राधा को इसी रति की प्रसारिणी मानकर उक्त सम्प्रदायवादी चले।

वल्लभ-सम्प्रदाय तक पहुँचते-पहुँचते राधा का ह्लादिनी रूप ही मुख्य हो गया—शेष गौण। कृष्ण की स्वकीया के रूप में ह्लाद-प्रसारिणी राधा ने ब्रज के कोने-कोने में लीलाओं का वितरण किया। शुद्ध, मुक्त जीवात्माएँ ही इन अद्भुत लीलाओं का रस पान कर सकती थीं।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में किशोरी-तत्त्व की स्वीकृति है। कृष्ण और राधा नित्य-किशोर और नित्य-किशोरी हैं। राधा का लक्ष्मी और शक्ति का रूप वहाँ दब कर रह गया तथा किशोरी-तत्त्व ही मुखर हो उठा। यद्यपि भक्ति की प्रत्येक विधा का वर्णन इस काव्य में मिल जाता है किन्तु फिर भी कवियों का मन किशोर और किशोरी की नित्य-लीला में ही अधिक रमा है। राधा कृष्ण की नित्य-वल्लभा है। भक्तगण निकुंज-रंध्रों से झाँककर उनकी रति का सुख-पान करने में ही अपना अहोभाग्य मानते हैं।

सखी-सम्प्रदाय में राधा नित्य-नारी और कृष्ण नित्य-पुरुष के रूप में माने गये। दोनों में कौन मुख्य है, कौन गौण, इसका प्रश्न ही नहीं उठता; फिर भी काव्य के अनुशीलन से लगता है कि राधा को प्रमुखता प्रदान की गई है—क्योंकि कृष्ण राधा के निरन्तर दर्शन करने पर भी अतृप्त ही रहते हैं तथा उन्हें राधा का क्षणिक विरह भी सह्य नहीं जान पड़ता। उन दोनों में नित्य-सखी भाव है तथा भक्तगण भी सखी की भावना से ही उसकी उपासना करते हैं।

राधा-कृष्ण-भक्तों ने रसों में सर्वोत्कृष्ट रस माधुर्य को माना था तथा उसी के अंतर्गत कान्ता राधा के विभिन्न रूप मुखर हुए थे। प्रस्तुत सम्प्रदायों का आधार यद्यपि प्रेमलक्षणा-भक्ति था, किन्तु वर्णन-शैली उत्तरोत्तर शृंगारमयी होती गई। अतः भक्ति अनाविल नहीं रह सकी। शनैः-शनैः लौकिक शृंगार की गंध का समावेश अधिकाधिक होता गया, जिसका प्रतिफलन रीतिकाल में दृष्टिगत होता है। रीतिकालीन राधापरक काव्य का अवलोकन करते हुए दो कोटि के कवि दृष्टि में आते हैं। एक वर्ग उन कवियों का है जो भक्ति के विशिष्ट सम्प्रदायों से सम्बद्ध थे। ऐसे शताधिक कवियों ने वि० सं० १७०० से वि० सं० १९०० के मध्य जन्म लिया किन्तु प्रस्तुत युग की मूल अंतश्चेतना भक्ति से इतर थी, अतः वे अधिक प्रकाश में नहीं आये। उनका महत्त्व साम्प्रदायिक भक्ति तक ही सीमित रहा। दूसरा वर्ग रीतिबद्ध तथा रीतिमुक्त कवियों का था जो इस युग के मूल स्वर का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। इन 'प्रतिनिधि कवियों' ने राधा-नाम को तो पूर्व मध्यकाल से ग्रहण किया, किन्तु वांछनीय पूज्य-बुद्धि ग्रहण नहीं कर पाये। राधा इनकी

नायिका बनकर रह गई। केवल शोभनीय शृंगार ही नहीं, अपितु अश्लील और कामुक वर्णन भी राधा के साथ जोड़ दिये गए। पूर्व-मध्यकाल में राधा-विषयक मधुर काव्य में जिस भावना को पूज्य-बुद्धि के समावेश के कारण भक्ति नाम दे दिया गया था, वह जैसे कराह कर रह गई तथा संस्कृत का काव्यात्मक साहित्यिक पक्ष पुनः प्रबल हो उठा—अब वह कोरा साहित्य ही था। भक्ति-काल में पूर्ववर्ती काव्य की रमणीयता के साथ दर्शन का भी योग था किन्तु रीतिकाल में मुगलकालीन विलास-भावना के प्रभाव से वह दर्शन नामक तत्त्व एक बार पुनः विलीन हो गया तथा कोरा शृंगारपरक काव्य पाठकों के सम्मुख आने लगा।

इस कामुकता से ऊब कर पाठकों में एक बार फिर से नवचेतना का उदय हुआ, जिसका प्रतीक है आधुनिक काल। यद्यपि आधुनिक काल में राधा को लेकर बहुत ही कम कवियों ने काव्य-सृजन किया, किन्तु जो कुछ भी उपलब्ध हैं, वह मध्यकाल की अपेक्षा कहीं अधिक सात्त्विक एवं उन्नत भावनाओं का पोषक है। आधुनिक साहित्य राधा-कृष्ण की कहानी में जीवन के कर्मण्य और उत्साहपूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है। जागरण-सुधारवादी भारतेन्दु वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित थे, अतः उन्होंने स्वकीया राधा का सुन्दर भक्तिपरक वर्णन किया है। इनकी अभिव्यक्ति रीतिपरक है तथा भावना भक्तिपरक। इनके समय में अनेक कवियों ने ब्रजभाषा में राधा-कृष्ण-विषयक कविताएँ रचीं। नवनीत चतुर्वेदी आदि कवि इसी कोटि के हैं।

रत्नाकर की राधा परम्परानुगत है। इनकी शैली में कुछ मार्जन अवश्य दीख पड़ता है। उनके भाव सूर और नन्ददास से ग्रहीत हैं तथा अभिव्यंजना की आधारशिलाएँ देव और पद्माकर की कृतियाँ हैं।

आजकल भी ब्रजभाषा-काव्य में राधा-विषयक स्फुट रचनाएँ यत्र-तत्र सुनने में आती हैं, किन्तु वे अब प्राचीन परिपाटी का निर्जीव अनुसरण-मात्र कर रही हैं, किसी नवीन उद्भावना का सृजन उनमें नहीं मिलता।

आज राधा का जो रूप उपलब्ध है उसके बिना कृष्ण का व्यक्तित्व अधूरा-सा ही जान पड़ता है। काव्य-रसिकों के सम्मुख बालिका,

किशोरी और युवती राधा के हाव, भाव, और हेला से आपूरित अनेक चित्र साकार हो उठते हैं।

ब्रजभाषा तथा ब्रज-प्रदेश से राधा-कृष्ण का अटूट सम्बन्ध रहा है। आज भी जैसे ब्रज के कछारों में, करील की झाड़ियों में, यमुना के पुलिन पर उनके स्मृति-चित्र बिखरे पड़े हैं। आज भी जैसे राधा कृष्ण की मुरली की तान पर रीझती-इठलाती, कुंज-कुंज में, गली-गली में अपने अद्वितीय प्रेम की होली खेलती फिरती है।

राधा के चरित्र के नानाविध विकसित रूपों को देखकर यह बात विशेप रूप से स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय संस्कृति के उत्थान, पतन और विकास के समानान्तर ही चिरकाल से राधा की भावना का उत्थान, पतन तथा विकास होता रहा। आधुनिक काल के बौद्धिक समाज में यह विपय अवरुद्ध-सा होता जा रहा है।

अर्वाचीन युग में कृष्ण का दार्शनिक एवं राजनीतिक पक्ष इतना प्रबल हो गया है कि उसके रसिक व्यक्तित्व को बुद्धिवादी समाज बहुत नहीं अपनाता। इसी कारण राधा की वेगमयी परिकल्पना यहाँ आकर सीमित घेरे में सिमट गई। फिर भी यह तो मानना ही होगा कि इस परिकल्पना के जन्मदाता की ब्रजभाषा-साहित्य को यह बहुत बड़ी देन है कि उसने गत साढ़े चार सौ वर्षों की विपुल साहित्य-राशि को अपनी छाया में सँजोकर रखा।

◇◇◇

सहायक ग्रन्थ अनुक्रमणिका

संस्कृत के ग्रन्थ

१. अणुभाष्य —वल्लभाचार्य

२. उज्वल नोलमणि —रूप गोस्वामी

३. ऐतरेय ब्राह्मण

४. कठोपनिषद्

५. गीतगोविन्द —जयदेव

६. दशश्लोकी —निम्बार्काचार्य

७. द्वैताद्वैत सिद्धान्त —(प्रकाशक) निम्बार्काश्रम, केमारवन, वृन्दावन

८. निम्बार्क भाष्य

९. पद्म पुराण

१०. प्रपन्न सुरत मंजरी सौरभ —शुकदेव नारायण (अनुवादक)

११. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण

१२. भक्ति रस तरंगिणी —नारायण भट्ट

१३ भक्ति सूत्र —नारद

१४. भगवद्भक्ति रसायन —मधूसूदन सरस्वती

१५. महाभारत

१६. राधातंत्र

१७. राधा सुधानिधि —श्री हित हरिवंश नर्मदा प्रिंटिंग वर्क्स, जबलपुर

१८. रामानुज भाष्य

१९. वृन्दावन शतक —प्रवोधानन्द सरस्वती

२०. श्रीमद्भागवत पुराण

२१. श्री युग्म तत्व समीक्षा —भगीरथ झा मैथिल

२२. श्री राधा प्रमाण कुसुमांजलि —(संकलन कर्ता) पं० रामनाथ शर्मा
२३. षट् संदर्भ —जीव गोस्वामी
२४. हरि भक्ति रसामृत सिंधु —रूप गोस्वामी

हिन्दी के ग्रन्थ

२५. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां —डॉ० नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२६. अष्टछाप —धीरेन्द्र 'वर्मा' एम० ए०
रामनारायण लाल बेनीमाधव
२, कटरा रोड, इलाहबाद २
२७. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय —दीनदयाल गुप्त
२८. अष्टयाम सेवा विधि —गोस्वामी रूपलाल
२९. उद्धव शतक —जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'
३०. कविवर रत्नाकर —कृष्ण शंकर शुक्ल
विद्या भास्कर बुक डिपो
ज्ञानवापी, बनारस।
३१. केलिमाल —स्वामी हरिदास
श्री कुंज विहारी पुस्तकालय,
विहारी जी का मंदिर, वृन्दावन
३२. गीता रहस्य —श्री बाल गंगाधर तिलक
तिलक ब्रदर्स, ५६८, नारायण पेट,
पूना २
३३. चंडीदास की पदावली —चंडीदास
३४. चतुर्युगी —महेश्वर प्रसाद
३५. चौरासी वैष्णवन की वार्ता
३६. देव ग्रन्थावली —गणेश बिहारी मिश्र (सम्पादक)
काशी नगरी प्रचारिणी सभा,
३७. द्वादश यश —चतुर्भुज दास
३८. नव-रस —बा० गुलाब राय

३९. पद्माकर ग्रन्थावली, —(संपादक) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
काशी ना० प्र० सभा
४०. पोद्दार अभिनंदन ग्रन्थ
४१. बयालीस लीला —ध्रुवदास
४२. बिहारी की वाग्विभूति —विश्वनाथप्रसाद मिश्र
४३. बिहारी बोधिनी —स्व० ला० भगवानदीन "दीन"
४४. बृज माधुरीसार, —वियोगी हरि
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
४५. भक्तगाथा —गोविन्द अलि
४६. भक्तमाला —नाभादास
४७. भागवत सम्प्रदाय —बलदेव उपाध्याय
४८. भारतीय साधना और सूर साहित्य —मुंशीराम शर्मा
४९. भारतेन्दु ग्रन्थावली —काशी नागरी प्रचारिणी सभा
५०. भावना और समीक्षा —डॉ० ओमप्रकाश
५१. भाव विलास (देव कृत) —पं० लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी (संपादक)
आर्य भाषा पुस्तकालय, काशी
५२. मतिराम मकरन्द — हरदयालु सिंह
५३. मध्यकालीन प्रेम साधना —परशुराम चतुर्वेदी
साहित्य भवन, इलाहाबाद
५४. मध्यकालीन धर्म साधना —डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी
५५. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ—डॉ० सावित्री सिन्हा
आत्माराम एण्ड संस,
काश्मीर गेट, दिल्ली ।
५६. महावाणी —हरिदास देवाचार्य
प्रकाशक : ब्रह्मचारी विहारी शरण
५७. मीरा वृहत्— पद संग्रह —(संपादक) पद्मावती 'शबनम'
५८. युगल शतक —श्री भट्ट
५९. रसखान —देवेन्द्र प्रताप
६०. रसिक अनन्यसार —जतन लाल

६१. **रसिकमाल** —उत्तमदास

६२. **राधावल्लभ जू को अष्टप्रहर सेवा विलास**
—गोस्वामी रूपलाल

६३. **राधावल्लभ भक्तमाल** —प्रियादास शुक्ल

६४. **राधावल्लभ संप्रदाय, सिद्धान्त और साहित्य**
—डॉ० विजयेन्द्र स्नातक
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
नई सड़क दिल्ली

६५. **रास पंचाध्यायी** —नन्ददास

६६. **रीतिकाव्य की भूमिका** —डॉ० नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई सड़क, दिल्ली

६७. **विद्यापति की पदावली** —रामवृक्ष वेनीपुरी

६८. **व्यास वाणी** —हरिराम व्यास

६९. **श्री मद्वैष्णव सिद्धान्त रत्न संग्रह**
—राधा गोविन्द नाथ तथा
श्री श्याम लाल हकीम

७०. **श्री राधा का क्रमिक विकास** —डॉ० शशिभूषण दास गुप्त
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
बनारस

७१. **श्री राधा सुधा शतक** —श्री हठी जी

७२. **श्री हित चरित** —गोपाल प्रसाद शर्मा

७३. **षोड़श ग्रन्थावली** —प्रकाशक : गोस्वामी गोपाल
वल्लभाचार्य

७४. **साहित्य रत्नावली** —किशोरी शरण

७५. **सिद्धान्त सार स्मृति** —गोस्वामी युगल वल्लभ

७६. **सुधर्म बोधिनी** —लाड़ली दास

७७. **सूर और उनका साहित्य** —डॉ० हरिवंशलाल शर्मा
भारतीय प्रकाशक मंदिर, अलीगढ़

७८. **सूर का भ्रमर गीत** —सुरेन्द्रशचन्द्र एम० ए०
सरस्वती पुस्तक सदन,
मोती कटरा, आगरा

७९. **सूरदास** —रामचन्द्र शुक्ल
सरस्वती मंदिर, जतनबर,
बनारस

८०. **सूर निर्णय** —द्वारिका प्रसाद पारीख तथा
प्रभुदयाल मीतल

८१. **सेवक चरित्र** —प्रियादास

८२. **हित चौरासी सेवक वाणी**

८३. **हित सुधा सागर**

८४. **हितामृत सिंधु** —हित हरिवंश

८५. **हिन्दी काव्य धारा में प्रेम प्रवाह** —परशुराम चतुर्वेदी

८६. **हिन्दी साहित्य** —श्याम सुन्दर दास

८७. **हिन्दी साहित्य** —डॉ० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी

८८. **हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास**
—डॉ० रामकुमार वर्मा
रामनारायण लाल—इलाहबाद

८९. **हिन्दी साहित्य का इतिहास** —रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दी पत्रिकाएँ

९०. **आलोचना पत्रिका** (त्रैमासिक पत्रिका, राजकमल प्रकाशन)

९१. **कल्याण पत्रिका** (शिवांक)

९२. **वल्लभीय सुधा** (त्रैमासिक पत्रिका)

९३. **साहित्य संदेश** (मासिक पत्रिका)

अंग्रेजी के ग्रन्थ

९४. An outline of the religious literature of India
—*J. N. Farquhar.*

९५. Aspects af Early Vishnuism.
—J. Conda.

९६. Bhakti Cult in Ancient India.
—B. K. Goswami.

९७. Collected works of Sir R G. Bhandarkar.
—Vol. I V

९८. History of Religion *—E. W. Hopkona.*

९९. Monograph on the religious sects in India.
—D. A. Pai.

१००. Vaishnava Faith and movement in Bengal.
—G. K. Dey.

१०१. Vaisananism, Saivism and other Religious systems of India. *—R. G. Bhandarkar.*

◇◇◇